इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDC 103
आदिकालीन एवं मध्यकालीन
हिन्दी कविता

आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिन्दी कविता

खंड 1

आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिन्दी कविता –1

खंड 2

आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिन्दी कविता –2

खंड 3

परिशिष्ट (अध्ययन हेतु निर्धारित कवितायें)

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. निर्मला जैन अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	संकाय सदस्य प्रो. सत्यकाम (पाठ्यक्रम संयोजक) प्रो. शत्रुघ्न कुमार प्रो. स्मिता चतुर्वेदी प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी अवकाश प्राप्त, हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली	
प्रो. मैनेजर पाण्डेय अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष भारतीय भाषा केंद्र,जे.एन.यू.,नई दिल्ली	
प्रो. हरिमोहन शर्मा अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली	
प्रो. गोबिंद प्रसाद प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष, भारतीय भाषा केंद्र जे.एन.यू.,नई दिल्ली	

पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक

प्रो. सत्यकाम, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई संख्या	संपादन सहयोग
प्रो.निरंजन सहाय प्रोफेसर,हिन्दी विभाग महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी (उ.प्र.)	1	डॉ. राजीव कुमार, परामर्शदाता (हिंदी) मानविकी विद्यापीठ, इग्नू
प्रो.देवशंकर नवीन भारतीय भाषा केंद्र जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	2	
डॉ.अमिताभ राय सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग श्यामलाल कॉलेज,दिल्ली	3,4	
डॉ.अनिल कुमार राय सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग श्यामलाल कॉलेज (सांध्य), दिल्ली	5	
डॉ.राजीव कुमार परामर्शदाता (हिन्दी) मानविकी विद्यापीठ,इग्नू	6	

पाठ्यक्रम परिचय

बी.ए. हिंदी (ऑनर्स) के विद्यार्थियों हेतु 'आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिंदी कविता' (BHDC-103) का यह अनिवार्य पाठ्यक्रम है। इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत आदिकालीन और मध्यकालीन हिंदी कविता की विशेषताओं का परिचय देते हुए उस अवधि के प्रमुख कवियों के साहित्यिक अवदान को रेखांकित किया गया है। आदिकालीन कविता के अंतर्गत अमीर खुसरो और विद्यापति का विशिष्ट स्थान है। दोनों के लेखन की आधार भूमि बिल्कुल भिन्न है इसलिए इनकी कविताओं का आस्वाद भी सर्वथा अलग-अलग है। प्रस्तुत पाठ्यक्रम में अमीर खुसरो और विद्यापति की कविताओं का विश्लेषण करते हुए इस आस्वादगत वैविध्य को आपके समक्ष रखने का प्रयास किया गया है।

हिंदी साहित्य के मध्यकाल को विद्वानों ने भक्तिकाल और रीतिकाल में विभाजित किया है। भक्तिकाल को भी विद्वानों ने निर्गुण मत और सगुण मत शीर्षक दो धाराओं में बाँटा है। निर्णुणमत से ज्ञानमार्गी संतकाव्यधारा और प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा तथा सगुणमत से रामभक्ति काव्यधारा और कृष्णभक्ति काव्यधारा का विकास हुआ है। इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत उपर्युक्त चारों काव्य धाराओं से संबंधित कवियों क्रमशः – कबीरदास, जायसी, तुलसीदास तााि सूरदास पर केंद्रित इकाइयाँ सम्मिलित की गई हैं। कृष्णभक्ति काव्य में अपनी रचनात्मकता से विशेष योगदान देने वाली 'मीराबाई' तथा 'रसखान' और नीतिकाव्य के प्रसिद्ध कवि 'रहीम' को भी इस पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि के रूप में 'बिहारी' और 'घनानन्द' पर केंद्रित इकाइयाँ भी रखी गई हैं। 'हिंदवी' के प्रसिद्व कवि 'नज़ीर अकबराबादी' इस पाठ्यक्रम का विशेष आकर्षण हैं। इस तरह प्रस्तुत पाठ्यक्रम में आपको उपरिलिखित बारह कवियों पर केंद्रित 'बारह' इकाइयों का अध्ययन करना है जिन्हें दो खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम एवं द्वितीय खंड में क्रमशः छह-छह इकाइयाँ रखी गयी हैं। परिशिष्ट के अंतर्गत पाठ्यक्रम में सम्मिलित सभी कवियों की चुनिंदा कविताएँ दी गई हैं। कविताओं के नीचे उनमें आए कठिन शब्दों के अर्थ तथा भावार्थ भी दिए गए हैं।

कठिन शब्दों का अर्थ समझते हुए आप अपने शब्दों में कविताओं की व्याख्या अथवा भावार्थ लिखने का प्रयास कीजिए। इस क्रम में आप इकाइयों के अंत में दी गई उपयोगी पुस्तकों का भी अध्ययन कर सकते हैं।

आपके उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाएँ!

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDC 103
आदिकालीन एवं मध्यकालीन
हिन्दी कविता

खंड

1

आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिन्दी कविता –1

इकाई 1

अमीर खुसरो का काव्य

इकाई 2

विद्यापति का काव्य

इकाई 3

कबीर का काव्य

इकाई 4

जायसी का काव्य

इकाई 5

सूरदास का काव्य

इकाई 6

तुलसीदास का काव्य

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1 का परिचय

बी.ए. हिंदी) ऑनर्स के विद्यार्थियों के लिए 'आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिंदी कविता' **(BHDC-103)** के पाठ्यक्रम का यह पहला खंड है। इस खंड में कुल छह इकाइयाँ हैं जिनमें क्रमशः अमीर खुसरो, विद्यापति, कबीरदास, जायसी, सूरदास और तुलसीदास के जीवन, उनकी काव्यगत संवेदना और अभिव्यक्ति की विशेषताओं का परिचय दिया गया है।

पाठ्यक्रम की पहली इकाई – 'अमीर खुसरो का काव्य' है। फारसी और हिंदी दोनों में काव्य रचना करने वाले अमीर खुसरो खड़ी बोली हिंदी के प्रथम कवि हैं। राज दरबार में रहते हुए भी उन्होंने हिंदी में सूफी भावबोध की लोक जीवन से जुड़ी हुई रचनाएँ की। कव्वाली, मुकरी, पहले जैसे विविध काव्यरूपों में रचना करने वाले अमीर खुसरो से संबंधित विस्तृत जानकारी देने का प्रयास इस इकाई में किया गया है।

दूसरी इकाई में 'विद्यापति का काव्य' है। विद्यापति हिंदी साहित्य में भक्ति और श्रृंगार के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। हिंदी में पहली बार 'राधा-कृष्ण' को कविता का विषय बनाने वाले विद्यापति उनके पारलौकिक-दिव्य रूप में बजाय लौकिक रूप में उनके प्रेम का वर्णन करते हैं। इन्होंने भक्ति संबंधी पदों की भी रचना की जिसका उल्लेख प्रस्तुत इकाई में किया गया है।

तीसरी इकाई 'कबीर का काव्य' कबीर के निगुर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार करवाते हुए उनकी सामाजिक चेतना और जाति आदि से जुड़ी संकीर्णताओं पर उनके काव्यगत प्रहार का परिचय देती है।

पाठ्यक्रम की चौथी इकाई 'जायसी का काव्य' है। निर्गुण काव्यधारा के सूफी कवि जायसी ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रेम को सर्वाधिक महत्व देते हैं। इनके काव्य में एक ओर धार्मिक प्रतीकात्मकता का समावेश हुआ है तो दूसरी ओर लोक जीवन की गहन अभिव्यक्ति हुई है। यह इकाई आपको जायसी के काव्य के विविध आयामों का परिचय देगी।

'सूरदास का काव्य' शीर्षक पाठ्यक्रम की पाँचवीं इकाई कृष्ण भक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास पर केंद्रित है। कृष्ण की बाललीला, राधा-कृष्ण का प्रेम, गोपियों का कृष्ण से अनुराग तथा सूरदास की सगुण ब्रह्म की अवधारणा इत्यादि अनेक पक्ष इस इकाई में प्रस्तुत किए गए हैं।

खंड की छठवीं और अंतिम इकाई 'तुलसीदास का काव्य' है। तुलसीदास रामभक्ति काव्यधारा के शिरोमणि कवि हैं। 'ब्रज' और 'अवधी' दोनों काव्य भाषाओं में रचना करने वाले तुलसीदास ने अपनी भक्ति को वेद, पुराण तथा शास्त्रों से समर्थित बताया है। उन्होंने अपनी भक्ति और सामाजिक दृष्टि में समन्वय पर बल दिया है। उनकी 'राम राज्य' की अवधारण एक आदर्श राज्य का स्वप्न है। यह इकाई तुलसी दास की कविता के विभिन्न पक्षों को हमारे समक्ष उपस्थित करती है।

प्रत्येक इकाई के अंत में इकाई में वर्णित विषयों से संबंधित उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है। इन पुस्तकों का अध्ययन कर आप अपनी साहित्यिक समझ को और अधिक विस्तार दे सकते हैं। इकाइयों के भीतर बोध प्रश्न और अभ्यास प्रश्न दिये गए हैं इन प्रश्नों को हल करके आप अपनी विषयगत प्रगति को जाँच सकते हैं। इकाइयों के अंत में परिशिष्ट के अंतर्गत इस खंड में शामिल कवियों से संबंधित कविताएँ दी गई हैं। कविताओं के नीचे कठिन शब्दों के अर्थ और भावार्थ दिए गये हैं। आप कठिन शब्दों का अर्थ समझकर अपने शब्दों में कविताओं की व्याख्या या भावार्थ लिखने का प्रयास करिए।

शुभकामनाओं के साथ!

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 अमीर खुसरो का काव्य

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अमीर खुसरो का जीवन परिचय

1.3 अमीर खुसरो का रचना संसार

1.4 अमीर खुसरो की हिंदी कविता

1.5 अमीर खुसरो की कविताओं में लोक जीवन

1.6 अमीर खुसरो की भाषा और काव्य सौंदर्य

1.7 अमीर खुसरो की कविता का वाचन और आस्वादन

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

अमीर खुसरो खड़ी बोली हिंदी के आदि कवि हैं। उन्होंने तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में खड़ी बोली हिंदी का 'हिंदवी' के रूप में सूत्रपात किया। उन्होंने अपने फारसी ग्रंथ 'दीबाचा-ए-दीवाने गुर्रतुल कमाल' में खुद को हिंदवी का ऐसा शायर कहा है, जो अपने दोस्तों को हिंदवी

में पद और छंद लिखकर नज़र करता है। ऐसे उल्लेखनीय और आदिकाल के केंद्रीय साहित्यकारों में एक की उपस्थिति और रचनात्मक व्यक्तित्व का अध्ययन इस इकाई का उद्देश्य है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- अमीर खुसरो की जीवन यात्रा से परिचित हो पाएँगे;
- आदिकालीन साहित्य संसार में अमीर खुसरो की उपस्थिति का आकलन कर सकेंगे;
- अमीर खुसरो के रचनात्मक अवदान से आपका रिश्ता बन पाएगा;
- अमीर खुसरो की खड़ी बोली हिंदी की कविताओं को जान पाएँगे;
- अमीर खुसरो की कविताओं में उपस्थित लोक जीवन के बहुविध प्रसंगों से आप परिचित होंगे;
- अमीर खुसरो की भाषा और काव्य सौंदर्य को समझ सकेंगे; तथा
- अमीर खुसरो की कविता के वाचन और आस्वादन संबंधी धरातलों से परिचित हो पाएँगे।

1.1 प्रस्तावना

आदिकालीन साहित्यिक परिदृश्य विविधताओं से भरा है। इस काल के उत्तरवर्ती दौर में एक बहुत बड़े साहित्यिक व्यक्तित्व का अवतरण हुआ, जिन्हें अमीर खुसरो के नाम से जाना जाता है। अमीर खुसरो के पिता ने उनका नाम रखा– अबुल हसन। लेकिन उनका उपनाम खुसरो इतना मशहूर हुआ कि असली नाम लुप्तप्राय हो गया और वे अमीर खुसरो नाम से ही ख्यात हो गए। वे हिंदी के अत्यंत उल्लेखनीय रचनाकार इस अर्थ में भी हैं कि उन्होंने तेरहवीं-चौदहवीं सदी में खड़ी बोली हिंदी का 'हिंदवी' के रूप में सूत्रपात किया। गौरतलब है कि इस भाषा का नामकरण भी स्वयं उन्होंने ही किया, इस बात की जानकारी हमें अमीर खुसरो की फारसी रचना 'मसनवी नुह सिपहर' तथा 'मसनवी किरानुस्सादैन' से मिल जाती है।

वे अरबी, फारसी, तुर्की और हिंदी के गहरे जानकार थे। उन्होंने अनेक ऐसी विधाओं में हिंदी में रचना की जो उनके पहले नहीं मिलतीं। अन्य शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा में दोहों, गीतों, ग़ज़लों और मर्सियों की शुरुआत उन्होंने ही की। वे गाते भी थे। हिंदी ग़ज़लों को गाकर लोकप्रिय बनाने का श्रेय खुसरो को ही दिया जाता है। सावन, बरखा, फागुन आदि ऋतुओं पर लिखे उनके गीत लोगों की ज़ुबान पर चढ़ गए। सूफी दरगाहों में उनकी कव्वालियाँ खूब लोकप्रिय हुईं। फारसी भाषा से हिंदी भाषा के पहले शब्दकोश 'खलिकबारी' या 'निसाबे ज़रीफी' की रचना का श्रेय भी अमीर खुसरो को ही है। उन्होंने अपने गुरु मशहूर सूफी संत हज़रत निजामुद्दीन औलिया के कहने के बाद श्री कृष्ण की जीवनी पर 'हालात-ए-कन्हैया' नामक पुस्तक का लेखन किया। वे एक साथ साहित्यकार, इतिहासकार, संगीतज्ञ तथा सूफी विचारधारा के साधक और योद्धा थे।

सवाल यह है कि हिंदी कविता के इतिहास में उनकी प्रसिद्धि के आधार क्या हैं ? दरअसल अमीर खुसरो की पहेलियों, दो सखुने, निसबतें, अनमेलियाँ या ढकोसले, मुकरियों, सूफी साखियों या दोहें, हिंदवी गीत या कव्वालियों, फारसी-हिंदवी मिश्रित गज़लें और रुबाइयों ने खूब धूम मचाई। आगे उनके जीवन तथा उनकी रचनात्मकता के विभिन्न पक्षों की जानकारी दी जा रही है।

1.2 अमीर खुसरो का जीवन परिचय

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से प्रकाशित पुस्तक 'खुसरो की हिंदी कविता' में अनेक साक्ष्यों के आधार पर यह बताया गया है कि अमीर खुसरो के जीवन काल की अवधि 1255 ई. से 1324 ई. के बीच विस्तृत है। लेकिन 2016 ई. में प्रदीप खुसरो द्वारा लिखित पुस्तक

'अमीर खुसरो' के अनुसार यह अवधि 1253 ई. से 1325 ई. तक है। उनका जीवन अनेक अतियों के बीच गुज़रा। उनके जीवन में बरबादी और आबादी, तबाही और तामीर, जंग और अमन, दुख और सुख जैसे पहलू शामिल रहे जिनके बीच वे योद्धाभाव से जीवन गुजारने में सफल रहे। वे बहत्तर वर्ष तक ज़िंदा रहे। अमीर खुसरो के पिता अमीर सैफुद्दीन महमूद तुर्किस्तान में लाचीन कबीले के सरदार थे। चंगेज़ खान के दौर में मंगोलों या मुगलों के अत्याचार से परेशान होकर बलख हजारा से उस वक्त हिंदुस्तान आए जब दिल्ली की सत्ता पर कुतुबुद्दीन ऐबक के एक गुलाम शमसुद्दीन इल्तुतमिश का शासन हो चुका था। अमीर सैफुद्दीन उत्तर प्रदेश के एटा जिले में गंगा किनारे पटियाली नामक गाँव में बस गए। संयोग ऐसा हुआ कि उनकी पहुँच दिल्ली के सुलतान शमसुद्दीन इल्तुतमिश के यहाँ हो गई और उनके सैनिक गुणों और दिलेरी से प्रभावित होकर सुलतान ने जल्दी ही उन्हें शाही फौज में सरदार की पदवी दे दी। सैफुद्दीन के तीसरे बेटे का नाम था– अबुल हसन यमीनुद्दीन मुहम्मद। यही अबुल हसन अमीर खुसरो नाम से मशहूर हुए।

अमीर खुसरो की परवरिश अन्य बच्चों से अलग कैसे थी, इसे समझने के लिए उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि पर एक नज़र डालना मुनासिब होगा। उनकी माँ माया देवी उर्फ दौलत नाज़ या सय्यदा मुबारक बेगम राजस्थान के एक संपन्न हिंदू राजपूत परिवार से थीं। इनके पिता का नाम था– अमीर एमादुल्मुल्क रावत अर्ज़। सुलतान बलबन के युद्धमंत्री एमादुल्मुल्क राजनीतिक दबाव के कारण नए-नए मुसलमान बने थे। इस्लाम ग्रहण करने के बावजूद उनके घर में हिंदू रीति-रिवाजों का संजीदगी से पालन होता था। उनके घर में गाने-बजाने का माहौल था। तात्पर्य यह है कि खुसरो के दिलो-दिमाग पर नाना के घराने और पिता के घराने का समन्वित प्रभाव पड़ा। अमीर खुसरो जब नौ वर्ष के थे तभी उनके पिता की मृत्यु

हो गई। पिता की मौत के बाद नाना ने अमीर खुसरो की शिक्षा-दीक्षा का उत्तरदायित्व निभाया। उन्हें तीरंदाजी, घुड़सवारी और सैन्य प्रतिभाओं के साथ ही संस्कृत, 'रामायण', 'महाभारत', संगीत, फारसी, अरबी, तुर्की, 'कुरआन शरीफ', 'हदीस' आदि में महारत हासिल करने का मौक़ा मिला। बीस वर्ष की आयु में उन्होंने पहले दीवान (काव्य-संग्रह) 'तोहफतुसिग्र' यानी 'जवानी का तोहफा' की रचना की। फारसी पद्य और गद्य में खड़ी बोली के मुहावरों का पहला प्रयोग उनकी रचनाओं में मिलता है।

कम उम्र में ही वे दिल्ली की साहित्यिक दुनिया में एक उम्दा शायर के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। अमीर खुसरो ने अपने गुरुओं का उल्लेख स्वयं किया है। ग़ज़ल के क्षेत्र में शेख़ सादी शीराज़ी, मसनवी के क्षेत्र में निजामी गंजवी, सूफी और नीति संबंधी काव्य क्षेत्र में खाकानी और सनाई का तथा कसीदे के क्षेत्र में कमाल इस्माइल का उन्होंने उल्लेख किया है। उन्होंने अपने दीवान 'गुर्रतुल कमाल' (शुक्ल पक्ष की पहली कमाल की रात) में हज़रत निजामुद्दीन औलिया के प्रति गहरे सम्मान का भाव व्यक्त किया है। जब खुसरो बीस साल के थे तब उनके नाना एमादुल्मुल्क रावत अर्ज़ का 113 वर्ष की उम्र में 1273 ई. में देहावसान हो गया। अपने नाना की लोकप्रियता के बारे में वे लिखते हैं, ''तुर्कों ने अपने कुलह (टोपी) का त्याग कर दिया है और दुख के कारण अपने चोगों को घुटनों तक फाड़ दिया है। हिंदू रईस, बराहमनों या ब्राहमणों की तरह नंगे सर फिरते हैं और इस विपत्ति पर रोते हैं।'' उनके निधन के बाद खुसरो को रोजी-रोटी की चिंता हुई; वे गयासुद्दीन बलबन के भतीजे अलाउद्दीन अख्तियारुद्दीन मोहम्मद किशली खाँ उर्फ मालिक छज्जू के पास गए जिसने उन्हें अपना सहयोगी बना लिया। वहीं पर उनकी मुलाक़ात गयासुद्दीन बलबन के बड़े बेटे बुगरा खाँ से हुई। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर बुगरा खाँ उन्हें पटियाला स्थित अपने दरबार में रख

लिया। जब बुगरा खाँ बंगाल की बगावत को कुचलने के लिए रवाना हुआ तब अमीर खुसरो भी फौज़ में शामिल किए गए। उन्होंने जंग को बहुत करीब से देखा। गयासुद्दीन बलबन ने बुगरा को बंगाल का हाकिम नियुक्त किया। उसने खुसरो को अपने साथ रखना चाहा पर खुसरो दिल्ली लौट आए। उन्होंने अपने एक दीवान में लिखा, ''माँ की ममता, गुरु का अध्यात्मिक लगाव और देहली की मोहब्बत, गंगा-जमुना के किनारे मुझे हर जगह से, हर एक कदरदान से खींच लाती थी। मेरी शायरी तो उड़ी-फिरती थी और मैं खुद उड़ फिर कर देहली या पटियाली चला आता था। मगर आखिर घर बढ़ा, खर्चे बढे।'' यहीं उनकी मुलाकात दिल्ली के अमीर हसन सिज्जी देहलवी से हुई। गयासुद्दीन बलबन ने अपने दरबार में दोनों दोस्तों को ऊँची हैसियत दी। अमीर खुसरो ने बलबन की शान में बहुत कसीदे लिखे। उनकी मुलाक़ात बलबन के बड़े लड़के शहजादा नासिरुद्दीन मुहम्मद कान से हुई, वह दोनों दोस्तों को मुल्तान ले गया। वहाँ वे पाँच साल तक रहे। चिंगिस के मंगोल हमले में शहजादा मारा गया, खुसरो भी युद्ध में सम्मिलत हुए थे, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। किसी तरह वे वहाँ से भाग निकले। वे दिल्ली आए और इस वाकए को बलबन को सुनाया, तीन दिन बाद बलबन की भी मौत हो गई। खुसरो अपनी माँ सय्यदा मुबारक बेगम के साथ पटियाली गाँव चले आए।

कुछ वर्षों बाद बलबन के चचेरे भाई हातिम खान ने खुसरो को अवध बुलाकर अपना दरबारी बना लिया। खुसरो अवध में दो साल रहे। उन्होंने यहाँ के प्रवास में 'मसनवी अस्पनामा' का लेखन किया। इसमें 240 शेर शामिल हैं, जिनमें 180 राम, लक्ष्मण और सीता की शान में लिखे गए हैं। कुछ वर्षों बाद वे बुगरा खाँ के बेटे कैकुबाद के दिल्ली दरबार में बुला लिए गए। जब पिता पुत्र में लड़ाई हुई, तब अमीर खुसरो ने सुलह कराया। गुलाम वंश के शासक

कैकुबाद के बाद खिलजी वंश के जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी जब दिल्ली का शासक बना तब उसने अमीर खुसरो को अमीर की पदवी दी। खुसरो के समकालीन इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी ने लिखा है ''सुलतानों की अय्याशी और दगाबाज़ साथियों की राजनीति से उन्होंने अपने दामन को सदा बचाए रखा। वे दिल्ली में नियमित रूप से औलिया साहब की खानकाह में जाते थे, फिर भी वे नीरस संत नहीं थे। वे गाते थे, हँसते थे, नर्तकियों का नृत्य और गायन भी देखते थे और सुनते थे।'' सुलतान जलालुद्दीन खिलजी के भतीजे और दामाद अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा और श्वसुर की हत्या कर दिल्ली की सल्तनत हथिया ली। खुसरो के प्रति उसका भी दृष्टिकोण उदार था।

1316 ई. में सुलतान के छोटे बेटे कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिलजी ने धोखे से दिल्ली की सल्तनत हासिल कर ली। लेकिन उसने खुसरो के दरबारी शायर का दर्जा बहाल रखा। 1321 ई. में गयासुद्दीन तुगलक जो दिल्ली का शासक बना, उसने अवध-बंगाल फतह के लिए गए लश्कर के साथ अमीर खुसरो को भेज दिया। इस बीच ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया बीमार हो गए। 1325 ई. में जब अमीर खुसरो बंगाल से दिल्ली लौट रहे थे तभी ख्वाजा का निधन हो गया। अमीर खुसरो के लिए यह घटना असहनीय थी। उन्होंने अपनी सारी संपत्ति गरीबों और यतीमों को बाँट दी। खुद गुरु निजामुद्दीन औलिया की दरगाह पर काला कपड़ा पहन कर शोकमग्न दशा में रहने लगे, जहाँ छः महीने के भीतर उनका निधन हो गया।

1.3 अमीर खुसरो का रचना संसार

अमीर खुसरो का रचना संसार संख्या और विषय– दोनों ही दृष्टियों से विस्तृत है। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के अनुसार उन्होंने निन्यानवे पुस्तकों की रचना की, जिनमें बाईस उपलब्ध हैं। इतिहास, अध्यात्म, प्रेम, गाथाएँ आदि उनके वर्ण्य विषय हैं। प्राप्त ग्रंथों की सूची

इस प्रकार है– 'मसनवी किरानुस्सादैन', 'मसनवी मतलउअनवार', 'मसनवी शोरों व खुसरू', 'मसनवी लैला मजनूँ', 'मसनवी आइना-ए-सिकंदरी', 'मसनवी हश्त्बहिश्त', 'मसनवी अस्पनामा', 'मसनवी खिज्रनामा या खिज्र खाँ देवल रानी या इश्किया', 'मसनवी नुह सिपहर', 'मसनवी तुगलकनामा', 'खजायनुल्फुतुह या तारीखे अलाई', 'इंशाएखुसरू या ख्यालाते खुसरू', 'रसायलुएजाज या एजाजे खुसरवी', 'अफजालुल्फबाएद', 'राह्तुल्मुजी', 'खालिकबारी', 'जवाहिरुल्बह्र', 'मुकाल', 'किस्सा चहार दरवेश', 'दीवान तुहफुतुस्सग्र', 'दीवानवस्तुल्हयात', 'दीवान गर्र्तुलकमाल', 'दीवानवकीय नकीय'।

1.4 अमीर खुसरो की हिंदी कविता

अमीर खुसरो की हिंदी (हिंदवी) रचनाएँ हैं :

- **खालिकबारी या निसाब-ए-ज़रीफी या मंजूम-ए-खुसरो–** यह हिंदवी फारसी शब्दकोश है जो काव्यमय है।
- **दीवान-ए-हिंदवी या कलामे-ए-हिंदवी–** इसमें आम आदमी के लिए पहेलियाँ, ढकोसले संकलित है।
- **तराना-ए-हिंदवी या कलाम-ए-हिंदवी**– इसमें आम भाषा में पहेलियों, ढकोसलों, निस्बतों, दो सुखनों, मुखम्मस, सावन, बरखा, शादी आदि गीतों, ग़ज़लों, कव्वालियों को संकलित किया गया है।

- **हालात-ए-कन्हैया व किशना**– ऐसी कथा है कि गुरु निजामुद्दीन औलिया के सपने में भगवान श्री कृष्ण आए फिर गुरु ने खुसरो से कहा कि तुम हिंदवी में कृष्ण की स्तुति लिखो। गुरु के निर्देशानुसार श्री कृष्ण पर यह पुस्तक खुसरो ने तैयार की।
- **नज़राना-ए-हिंदवी**– सांस्कृतिक एकता का गुलदस्ता।
- **लुआली-ए-उमान या जवाहर-ए-खुसरवी**– यह भी खुसरो की कविताओं का संकलन है।

अमीर खुसरो को हिंदी से कितना लगाव था , इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि वे अपने को हिंदुस्तान की तूती कहते हैं और और खुद को हिंदवी भाषा की मिठास का कायल बताते हैं। वे दीवान 'गुर्रतुलकमाल' में कहते हैं :

तुर्क-ए-हिंदुस्तानियम मन हिंदवी गोयम जवाब,

चु मन तूती-ए-हिंदम अज़ रास्त पुरसी।

जे मन हिंदवी पुरस ता नग्ज़ गोयम,

शकर मिस्त्री न दारम कज़ अरब गोयम सुखन।।

अर्थात मैं हिंदुस्तानी तुर्क हूँ, मैं हिंदुस्तान की तूती हूँ। अगर वास्तव में मुझसे कुछ पूछना चाहते हो तो हिंदवी भाषा में पूछो। मैं तुम्हें हिंदवी में अनुपम बातें बता सकूँगा। मेरे पास मिस्र की शक्कर नहीं है जो अरबी में बात करूँ।

यहाँ हिंदवी से तात्पर्य तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी की वह भाषा या बोली है जो आम जनता द्वारा बोली या समझी जाती थी। हिंदवी भाषा दरअसल खड़ी बोली है। वे बहुभाषाविद थे,

लिहाजा उन्होंने अपनी कविता समेत अन्य रचनाओं में जिस हिंदी का प्रयोग किया वह शुरू से ही सामासिक बनावट के साथ आगे बढ़ी।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए।

   (क) अमीर खुसरो का वास्तविक नाम बताइए।

   .....

   .....

   (ख) अमीर खुसरो ने अपनी भाषा को किस नाम से पुकारा।

   .....

   .....

   (ग) अमीर खुसरो के पिता का नाम बताइए, भारत में उनका निवास कहाँ था?

   .....

   .....

   (घ) अमीर सैफुद्दीन किस कबीले से संबंधित थे और कहाँ के रहने वाले थे?

   .....

   .....

2. अमीर खुसरो के जीवन का परिचय दस पंक्तियों में दीजिए।

   .....

   .....

   .....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. अमीर खुसरो की 'हिंदवी' की प्रमुख रचनाओं का परिचय दीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 अमीर खुसरो की कविताओं में लोक जीवन

अमीर खुसरो का लोक से गहरा ताल्लुक था। वह लोक जिसमें उनका जीवन गुज़रा , उसकी अनेक छवियों को उन्होंने अपनी कविता में प्रस्तुत किया। धार्मिक आडंबरों से दूर उनकी कविता सूफी विचार में गहरे डूब कर नए तरह के काव्य आस्वाद को रचने में सफल रही। लोकरंग में रचे-पगे खुसरो ने वसंत, सावन, बरखा, पनघट, हिंडोला(झूला), होली, चक्की, शादी-ब्याह, विदाई, साजन, बाबुल, ईश आराधना आदि पर गीतों की रचना की। उनके द्वारा रचित दोहों, ग़ज़लों और कव्वालियों में लोकरंग की अनुपम छटा नज़र आती है।

लोक परंपरा की सबसे मजबूत बानगी उनकी पहेलियो में नज़र आती है। लोक साहित्य में सबसे पहले अमीर खुसरो ने ही पहेलियाँ बनाने का रिवाज़ शुरू किया। संस्कृत साहित्य में गौण रूप में प्रहेलिका नाम से पहेलियाँ मिल जाती हैं, लेकिन खुसरो ने इन्हें अपने बेमिसाल अंदाज़ में प्रस्तुत किया। उनकी रचनाओं में दो तरह की पहेलियाँ नज़र आती हैं– 'बूझ पहेली' और 'बिन बूझ पहेली'। बूझ पहेली में उत्तर पहेली में ही निहित होता है, जबकि बिन बूझ पहेली में अनुमान और युक्तियों के सहारे उत्तर हासिल किए जाते हैं। लोक संस्कृति की निरंतरता की सुवास समेटे इन पहेलियों के महत्व का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि अभी भी लोगों की जुबां पर ये चढ़ी हुईं हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

एक नार वह दाँत दँतीली। पतली दुबली छैल छबीली।।

जब बा तिरियहि लागै भूख। सूखे हरे चबावे रूख।।

जो बताय वाही बलिहारी। खुसरो कहे वरे को आरी।।

– आरी (बूझ पहेली)

बिन बूझ पहेली का एक लोकप्रसिद्ध उदाहरण देखिए। अनुमान के सहारे इसका उत्तर पाना आसान होता है :

एक थाल मोतियों से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।

चारो ओर वह थाली फिरे, मोती वासे एक ना गिरे।।

– आसमान (मोती-तारे,बिन बूझ पहेली)

लोक रंग का एक अहम हिस्सा लोगों की जुबां पर चढ़ी खुसरो रचित वे साखियाँ हैं, जो आध्यात्मिक रंगतों के साथ हैं, उदाहरण के लिए :

रैन चढ़ी रसूल की, सो रंग मौला के हाथ।

जाके कपरे रंग दिए, सो धन-धन वाके भाग।।

भक्ति प्रेम की तन्मयता का सुंदर पक्ष है। इस रंग के अनेक दोहें खुसरो द्वारा रचे गए हैं। लोक मन में बसे इन दोहों या साखियों की याद अभी भी लोगों के जेहन में है, नजीर के रूप में लोग इन साखियों को व्यवहार में लाते हैं :

खुसरो दरिया प्रेम का, सो उल्टी वाकी धार।

जो उबरा सो डूब गया, जो डूबा सो पार ।।

X X

खुसरू रैन सोहाग की, जागी पी के संग।

तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भए एक रंग।।

इन दोहों के लोक आग्रह का असर रीतिकाल के बिहारी जैसे सुप्रसिद्ध रचनाकार के एक दोहे पर देखा जा सकता है :

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।

ज्यौं-ज्यौं बूड़े स्याम रँग त्यौं-त्यौं उज्जल होय।।

भारतीय लोक जीवन का एक अहम पक्ष संगीत है। उन्होंने संगीत की दुनिया में कुछ नायाब तोहफे दिए– कव्वाली, तराना, राग यमन आदि। इनमें कव्वाली लोक मन के सर्वाधिक करीब है। हिंदी संसार में उनकी एक कव्वाली खासी लोकप्रिय हुई :

छाप तिलक तज दीन्ही रे, तो से नैना मिला के।

प्रेम बटी का मदवा पिलाके

मतवारी कर दीन्हीं रे मो से नैना मिलाई के।

खुसरो निज़ाम पै बलि-बलि जइए,

मोहे सुहागन कीन्हीं रे, मोसे नैना मिला के।।

लोक में व्याप्त मुकरियाँ और दो सखुना खूब लोकप्रिय हुए। इन्हें शुरू करने का श्रेय भी अमीर खुसरो को है। मुकरियों में पद्य शैली में सवाल, संभावना और उत्तर का ज़िक्र होता था, जैसे :

उछल-कूद के वह जो आया। धरा-ढँका वह सब कुछ खाया।

दौड़ झपट जा बैठा अंदर। ऐ सखी साजन ना सखी बंदर।।

आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ऐसी मुकरियों की रचना की, जिन्हें खासी लोकप्रियता भी हासिल हुई। अमीर खुसरो ने दो सखुनों की भी रचना की। इनमें एक से अधिक सवाल पूछे जाते हैं, जिनका उत्तर एक ही होता है। अलग-अलग सवालों का जवाब एक ही होता है, पर उसके संदर्भों में विभिन्नता होती है, श्लेष अलंकार की तरह। उदाहरण के लिए :

- रोटी जली क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों,

  पान सड़ा क्यों?

  उत्तर– फेरा न था।

- अनार क्यों न चक्खा,

  वजीर क्यों न रखा?

उत्तर– दाना न था।

खुसरो के दो सखुने लोक में खूब सराहे गए। सखुन फारसी भाषा का शब्द है, उर्दू भाषा में यह सुखन भी लिखा जाता है, इसका मतलब कथन या उक्ति है। खुसरो के दो सखुने प्रश्न रूप में होते थे, जिनका जवाब एक ही होता था। कुछ उदाहरण देखिए :

दीवार क्यों टूटी? राह क्यों लूटी?

जवाब– राज न था। दीवार बनाने वाला राजमिस्त्री नहीं था, इसलिए दीवार टूटी। उसी तरह दूसरी ओर देश में राज न था अर्थात राजव्यवस्था नहीं थी, कानून व्यवस्था नहीं थी, लिहाजा राहजनी बढ़ गई थी, राह में लोगों को लूटा जा रहा था।

भारत में लोकरंग का एक पक्ष उन ऋतु गीतों से बना है, जिनसे जीवन-जगत के विविध पक्ष जुड़े हैं। उन्होंने सावन, वसंत जैसे अनुभवों पर अनेक पद्य लिखे। उदाहरण के लिए :

जो पीया आवन कह गए–अजहुँ न आए स्वामी हो।

ए जो पिया आवन कह गए।।

आवन आवन कह गए आए न बारह मास।

ए हो जो पिया आवन कह गए।।

उसी तरह सावन मास में गाए जानेवाले झूले के अनेक गीत लोक में व्याप्त हैं, जिनकी रचना अमीर खुसरो ने की :

झुलना झूला झुलावो री

झुलना झुलावो री, आवो री

अम्बुआ की डारी पे कोयल बोले रामा

कूक कूक जिया रे, झुलना झुलावो री

नन्हीं-नन्हीं बरखा बून्दनियाँ

बरसत बहार आये बरखा फुहार

अबहुँ ना आए बलामवा, झुलना झुलावो री।

अमीर खुसरो के नाम से ऐसे गीत भी मशहूर हैं, जो शादी-ब्याह में गाए जाते हैं। उन अनेक गीतों में कुछ बेहद लोकप्रिय हैं, उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित गीत :

काहे को ब्याही बिदेस रे,

लखि बाबुल मोरे!

हम तो बाबुल तोरे बागों की कोयल

कुहुकत घर-घर जाऊं, लखि बाबुल मोरे।

हम तो बाबुल तोरे खेतों की चिड़ियाँ

चुग्गा चुगत उड़ि जाऊं, लखि बाबुल मोरे।

हम तो बाबुल तोरे बेले की कलियाँ

जो मांगे चली जाऊं, लखि बाबुल मोरे।

हम तो बाबुल तोरे खूंटे की गइया

जित हांको हंक जाऊं लखि बाबुल मोरे।

इस तरह अमीर खुसरो की कविताएँ लोक रंग में डूबे अहसासों की सफल और सुंदर अभिव्यक्तियाँ हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि अपने लोक अहसासों के कारण ही उनकी कविताएँ हिंदी मन में शताब्दियों बाद भी रची-बसीं हैं।

1.6 अमीर खुसरो की भाषा और काव्य सौंदर्य

अमीर खुसरो बहुभाषाविद थे। उनका फारसी, तुर्की और अरबी भाषा पर जबर्दस्त अधिकार था। खड़ी बोली के आदि प्रयोगकर्ता के रूप में उनकी ख्याति है। उन्होंने घोषणा की कि वे ऐसे भारतीय तुर्क हैं जिनकी मातृभाषा हिंदी है। अपने दीवान 'गुर्रतुलकमाल' में उन्होंने कहा :

तुर्क-ए-हिंदुस्तानियम मन हिंदवी गोयम जवाब
चु मन तूती-ए-हिंदम अज़ रास्त पुरसी।
जे मन हिंदवी पुरस ता नग्ज़ गोयम ,
शकर मिस्री न दारम कज़ अरब गोयम सुखन।।

अर्थात 'मैं हिंदुस्तानी तुर्क हूँ, मैं हिंदुस्तान की तूती हूँ अगर वास्तव में मुझसे कुछ पूछना चाहते हो तो हिंदवी भाषा में पूछो। मैं तुम्हें हिंदवी में अनुपम बातें बता सकूँगा। मेरे पास मिस्र की शक्कर नहीं कि अरबी में बात करूँ।' यहाँ 'हिंदवी' से तात्पर्य तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी की उस भाषा या बोली से है, जो उस समय दिल्ली और उसके आस-पास के इलाकों के साथ हिंदुस्तान के कुछ अन्य इलाकों में भी बोली जाती थी।

अमीर खुसरो की यह हिंदवी दरअसल खड़ी बोली है। इसकी जड़ें संस्कृत में थीं, पर दिल्ली तथा उसके आसपास की अनेक भाषाओं सहित अन्य अनेक भाषाओं के शब्द भी सहजता से शामिल हो गए थे। उन भाषाओं की पहचान जिन रूपों में की जा सकती हैं, वे हैं– ब्रजभाषा,

राजस्थानी, अवधी, हरियाणवी, मुलतानी, लाहौरी(पंजाबी), सिंधी, गुजराती, मराठी, अपभ्रंश आदि। अमीर खुसरो ने अपनी हिंदवी रचनाओं में फ़ारसी, अरबी, तुर्की आदि के शब्दों का भी प्रयोग किया।

अमीर खुसरो के दौर में दरबारी भाषा फ़ारसी थी। कर्मकांड की भाषा संस्कृत थी, लेकिन बोलचाल की भाषा अलग थी। खुसरो ने इसे हिंदवी' कहा। उन्होंने इस 'हिंदवी' पद का दो अर्थों में प्रयोग किया, दिल्ली और उसके आसपास के इलाकों में बोली जाने वाली भाषा– खड़ी बोली और दूसरी ओर उनके समय हिंदुस्तान में बोली जाने वाली अन्य भाषाएँ।

उन्होंने भारत के अनेक हिस्सों का भ्रमण किया था, परिणाम यह हुआ कि वे अनेक भारतीय भाषाओं के संपर्क में आए। उन्होंने पहली बार भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण किया। 'नूर सिपहर' उस समय की हिंदुस्तानी भाषाओं का प्रामाणिक दस्तावेज़ प्रस्तुत करती है। इसके अतिरिक्त अपने फारसी-हिंदी शब्दकोश 'ख़ालिकबारी' में बारह बार हिंदी शब्द का प्रयोग किया।

अमीर खुसरो की विभिन्न रचनाओं में प्रयुक्त भाषा आखिर क्यों महत्वपूर्ण हैं? दरअसल उनकी भाषा लोक के करीब है। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित पुस्तक 'अमीर खुसरो' में ब्रजरत्न दास ने ठीक ही दर्ज किया है, ''खुसरो को हुए सात सौ वर्ष व्यतीत हो गए किंतु उनकी कविता की भाषा इतनी सजी सँवरी और कटी-छँटी हुई है कि वह वर्तमान भाषा से बहुत दूर नहीं अर्थात उतनी प्राचीन नहीं जान पड़ती। भाटों और चारणों की कविता एक विशेष प्रकार के ढाँचे में ढाली जाती थी। चाहे वह खुसरो के पहले की अथवा पीछे की हो तो भी वह वर्तमान भाषा से दूर और खुसरो की भाषा से भिन्न और कठिन जान पड़ती है। इसका कारण

साहित्य के संप्रदाय की रूढ़ि का अनुकरण ही है। चरणों की भाषा कविता की भाषा है, बोलचाल की भाषा नहीं। ब्रजभाषा के 'अष्टछाप' आदि कवियों की भाषा भी साहित्य, अलंकार और परंपरा के बंधन से, खुसरो के पीछे की होने पर भी उससे कठिन और भिन्न है। कारण केवल इतना ही है कि खुसरो ने सरल और स्वाभाविक भाषा को ही अपनाया है, बोलचाल की भाषा में लिखा है, किसी सांप्रदायिक बंधन में पड़कर नहीं।'' खुसरो की भाषा के मिजाज़ अलग-अलग हैं। वे अभिधा की भाषा में कविता कहते हैं, साथ ही वे लक्षणा और व्यंजना की भाषा की मारक क्षमता का भी बेहतरीन उपयोग करते हैं। उनकी पहेलियों में लक्षणा के बेहतरीन उदाहरण मिल जाते हैं। उसी तरह उनके आध्यात्मिक दोहों/कव्वालियों में व्यंजना शब्द शक्ति की झलक मिलती है। अमीर खुसरो की भाषा और काव्य सौंदर्य की खूबियों के अनेक रंग हैं, जिन्हें देख कर यह समझ पाना मुश्किल हो जाता है कि यह खड़ी बोली हिंदी के बेहद आदिम रंग का आस्वाद है।

बोध प्रश्न

4. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दो-तीन पंक्तियों में दीजिए।

(क) 'बूझ पहेली' तथा 'बिन बूझ पहेली' में अंतर बताइए।

.....

.....

.....

(ख) अमीर खुसरो की 'हिंदवी' का तात्पर्य किस भाषा-रूप से हैं?

.....

.....

.....

(ग) 'दो सखुने' का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

(घ) अमीर खुसरो ने 'हिंदवी' से अपने संबंध का बयान किस प्रकार किया था?

.....

.....

.....

5. अमीर खुसरो की भाषागत विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

6. अमीर खुसरो के काव्य में अभिव्यक्त लोक पक्ष की विविधता का सोदाहरण परिचय दीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 अमीर खुसरो की कविता का वाचन और आस्वादन

कविता का वाचन

देखिए– परिशिष्ट

कविता का आस्वादन

- **छाप-तिलक तज दीन्ही रे, तो से नैना मिला के। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यांश अमीर खुसरो द्वारा रचित प्रसिद्ध कव्वाली है।

व्याख्या

विषय-वस्तु और काव्य तकनीक दोनों नज़रिए से यह एक बेहतरीन रचना है। अमीर खुसरो सूफी संत हजरत निजामुद्दीन औलिया के पट्ट शिष्य थे। अपने गुरु के प्रति अपनी निष्ठा को प्रकट करते हुए खुसरो ने यह कव्वाली लिखी है। भारतीय अद्वैतवाद और इस्लामी एकेश्वरवाद की यह विशिष्टता है कि इनमें अपने इष्ट के प्रति एकनिष्ठ समर्पण को प्रकट

करने के लिए अनेक ऐसे बिंबों की रचना की जाती है, जिनमें दुनियावी संबंधों की अद्वितीय गहराई प्रकट हो। इस कव्वाली में प्रियतम से निगाहें मिल जाने अर्थात प्रेम के स्वीकार के बाद के असीम आनंद का वर्णन है। छाप-तिलक छोड़ना अर्थात एकनिष्ठ प्रेम की राह में आने वाली सभी बाधाओं को छोड़ देना। प्रेम की राह में बाधा के रूप में आने वाले अनुष्ठानों को त्यागे बिना प्रेम का मिलना असंभव है। आँख मिलने के बाद की असीम प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए, खुसरो एक और बिंब का प्रयोग करते हुए कहते हैं यह घटना प्रेम बटी अर्थात प्रेम रूपी जड़ी-बूटी खाने के बाद छा जाने वाली मदहोशी जैसी है। जिससे प्रेमिका मतवाली हो गई है यानी प्रेम का नशा उस पर छा गया है। खुसरो रूपी प्रेमिका कहती है कि मैं निजाम यानी निजामुद्दीन औलिया पर बलि-बलि जाऊँ, कुर्बान हो जाऊँ। अंत में वह कहती है कि मैं सुहागन हो गई। यानी उसके प्रेम और समर्पण को निजामुद्दीन औलिया के रूप में आधार मिल गया। अमीर खुसरो की यह कव्वाली उस भारतीयता की सुंदर अभिव्यक्ति है, जिसमें अनेक धाराएँ मिलकर एक बड़ी धारा को संभव करती है। बिंबों के सघन प्रयोग की दृष्टि से भी यह कविता महत्वपूर्ण है।

विशेष

ईश्वर के प्रति अभिव्यक्त प्रेमाभक्ति का स्वरूप भारतीय पद्धति का है।

- **गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस। ...**

व्याख्या

खुसरो अपने दोहों के कारण भी बहुत प्रसिद्ध हुए। खुसरो ने यह दोहा अपने गुरु हजरत निजामुद्दीन औलिया के देहावसान अर्थात मृत्यु पर लिखा। गुरु के निधन के बाद उनकी देह पलंग अथवा कब्र में रखी हुई है, खुसरो यह दृश्य देख विरत मन से वापस हो गए। वे कहते हैं, इस निधन के बाद चारों दिशाओं में रैन हो गई अर्थात अंधकार छा गया। गुरु के प्रति असीम लगाव को प्रकट करता यह दोहा अपनी मार्मिक अभिव्यक्ति के लिहाज से अत्यंत उल्लेखनीय है।

- **काहे को ब्याही बिदेस रे, ...**

व्याख्या

इस गीत में परदेश में ब्याही गई बेटी अपनी पीड़ा और विछोह को अपने पिता को संबोधित करते हुए व्यक्त कर रही है। परंपरागत भारतीय समाज में बेटी के लिए विवाह का अर्थ अपने बचपन से लेकर युवा दिनों (ब्याह से पूर्व तक) की सहेलियों तथा मायके से संबद्ध अभिभावक एवं संबंधियों से बिछुड़ जाना था। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में जब खुसरों यह गीत लिख रहे थे तब एक सामान्य लड़की के लिए यह विडंबना कहीं ज्यादा गहरी थी। इस गीत में परदेश में ब्याही गई बेटी कृषक जीवन एवं लोक जीवन से संबंधित विभिन्न संदर्भों के माध्यम से अपने पिता अथवा मायके से संबंध, विडंबना एवं विछोह को व्यक्त करती है। वह अपने को पिता के बाग की कोयल बताती है जो घर-बार में कुहुकती रहती है। अर्थात जिसके होने से चहल-पहल, रौनक बनी रहती है। फिर स्वयं को चिड़िया के रूप में प्रस्तुत करते हुए उस विडंबना को रखती है कि जहाँ उसका लालन-पालन (चुग्गा चुगत) हुआ है वहाँ से एक दिन उसे चले जाना (उड़ जाना) है। वह बेले के फूल की तरह है जिससे घर में सुंदरता व्यापती है लेकिन एक दिन उसे कोई माँग कर (ब्याह कर) ले जाता है। फिर वह

अपनी निरीहता व्यक्त करते हुए कहती है कि मैं खूंटे से बँधी गाय के समान हूँ, जहाँ हाँक दोगे चली जाऊँगी। शादी के बाद उसका गुड़ियों एवं सहेलियों का संग-साथ छूट गया। पारिवारिक स्नेह और पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए वह कहती है कि जब पिता के महल से डोली निकली, इस विछोह के कारण भाई पछाड़ खाकर गिर गया। मायके के पशु-पक्षी भी उसके संगी-साथी हैं। डोली जाते देख कोयल भी पुकारने लगी। वह कोयल को सांत्वना देते हुए कहती है, ऐ कोयल तू क्यों रोती है, जगत की रीति के अनुसार मैं परदेश जा रही हूँ। यह गीत अंत में अत्यंत कारुणिक हो जाता है जिस पिता को संबोधित करते हुए वह अपनी भावना व्यक्त करती है; जब उसके पति उसकी डोली लेकर जा रहे हैं, पीछे-पीछे पिता नंगे पाँव भागते हुए आ रहे हैं।

- **खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग ....**

व्याख्या

खुसरो परमात्मा की परिकल्पना पति के रुप में करते हुए कहते हैं कि जिस दिन मैं सुहागिन बनी (मेरी शादी हुई) उस पूरी रात अपने पिया के साथ जागती रही। उनके साथ जो हमारा रागात्मक संबंध बना उसमें हम दोनों एक-से हो गए। हमारे बीच कोई भेद नहीं रहा। यहाँ खुसरो ने ईश्वर से साक्षात्कार की दशा में भक्त और भगवन के एकाकार हो जाने की दशा को दांपत्य के रूपक में अभिव्यक्त किया है।

- **देख मैं अपने हाल को रोऊं, जार-ओ-जार। ...**

व्याख्या

खुसरो भक्त के रूप में प्रभु की क्षमता और अपनी अक्षमता की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं कि प्रभु सद्‌गुणों से परिपूर्ण है जबकि मैं अवगुणों से भरा हूँ। उनके (खुसरो के) अवगुण

परमात्मा को पाने की राह में बाधा बन रहे हैं। इस कारण वे भक्त के रूप में दुखी हो रहे हैं, रो रहे हैं।

1.8 सारांश

- अमीर खुसरो खड़ी बोली हिंदी के प्रारंभिक कवि हैं।
- उनके जीवन काल की अवधि 1255 ई. से 1324 ई. के बीच है।
- खुसरो के ननिहाल में हिंदू संस्कृति की मौजूदगी और ददिहाल में दरबारी और इस्लामी संस्कृति के मौजूद होने के कारण उनके व्यक्तित्व में अनेक संस्कृतियों का सहज ही मेल हो गया।
- वे विभिन्न सुलतानों के दरबार में रहे तथा फारसी और हिंदवी दोनों में रचनाएँ कीं।
- हिंदी साहित्य में सबसे पहले अमीर खुसरो ने ही पहेलियाँ बनाने का रिवाज शुरू किया। हिंदी में उनके द्वारा प्रयुक्त अन्य काव्य-रूप हैं– दोहा, कव्वाली, दो सखुने, मुकरी आदि।
- उनके द्वारा रचित दोहों, गजलों और कव्वालियों में लोक रंग की अनुपम छटा नजर आती है।
- खुसरों ने सरल और स्वाभाविक भाषा को अपनाया।
- खुसरो की कविता लोक संस्कृति से अपने गहरे संबंध के कारण भी याद की जाती है।

1.9 शब्दावली

उत्तरवर्ती – बाद में आनेवाला।

उपनाम – पुकारने का नाम।

मर्सिया – यह शब्द अरबी के 'रिसा' से बना है जिसका अर्थ होता है किसी की मौत पर विलाप करना।

सूफी विचारधारा – सूफीवाद या तसव्वुफ इस्लाम का एक रहस्यवादी पंथ है। इसके अनुयायियों को सूफी कहते हैं। इनका लक्ष्य आध्यात्मिक प्रगति एवं मानवता की सेवा रहा है। सूफी राजाओं से दान, उपहार स्वीकार नहीं करते थे और सादा जीवन बिताना पसंद करते थे। यह वास्तव में प्रेम पर आधारित एक भक्ति पद्धति है, जिसमें रूढ़ियों और कट्टरताओं के प्रति असहमति होती है। इस धारा में गायन, वादन की केंद्रीय भूमिका थी, जिनसे अपने समर्पण को व्यक्त किया जा सकता है। इस विचार के दरवाज़े सभी वर्गों, जातियों यहाँ तक कि स्त्रियों के लिए भी खुले थे, यह असमानता पर आधारित समाज में एक प्रगतिशील मान्यता थी।

दो सखुने – सखुन फारसी भाषा का एक शब्द है, इसका अर्थ कथन या उक्ति है।

निस्बतें – अरबी भाषा का एक शब्द है, इसका अर्थ है संबंध या तुलना।

अनमेलिय या ढकोसले – अनमेलिय या ढकोसले का प्रचलित अर्थ है– आडंबर, पाखंड, ऊपरी ठाट-बाट या एक विशेष प्रकार की कविता,

उक्ति, दोहे जिसका अर्थ ना हो और जो इतनी बेतुकी हो कि सुनकर फौरन हँसी छूट जाए।

मुकरी – पहेलीनुमा पद या छंद।

तामीर – निर्माण।

अमन – शांति।

जंग – युद्ध

शाही सेना – सम्राट की सेना।

संजीदगी – पूरे मन से पूरी गंभीरता से।

कसीदा – कसीदा फारसी भाषा का वह काव्यरूप है, जिसमें प्रशंसा होती है।

आस्वाद – किसी रचना का आनंद लेना।

आदिम – पुराना।

अभिधा – कोशगत अर्थ, शब्दार्थ।

व्यंजना – एक शब्द शक्ति जिसमें अर्थ विशिष्ट संदर्भ से जुड़ता है।

रूढ़ – प्रचलित अर्थ।

कर्मकांड – हिंदू परंपरा का ऐसा विधान जिसमें विधि-निषेध के अनुसार धार्मिक क्रियाएँ संपन्न होती हैं।

रसूल – ईश्वर का दूत।

तज – त्याग।

नैन – नेत्र।

बटी – जड़ी-बूटी।

मदवा – रस, पेय।

निजाम – निजामुद्दीन औलिया।

बलि – बलिहारी।

मोहे – मुझे।

1.10 उपयोगी पुस्तकें

- *महाकवि खुसरो*– सफदर आह; उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ
- *सूफी संत अमीर खुसरो*– डां. परमानंद पांचाल; इंद्रप्रस्थ इंटरनेशनल, 18-बी, साऊथ अनारकली, दिल्ली

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) अमीर खुसरो का वास्तविक नाम अबुल हसन था।

   (ख) अमीर खुसरो ने अपनी भाषा को 'हिंदवी' नाम से पुकारा।

   (ग) अमीर खुसरो के पिता का नाम अमीर सैफुद्दीन था। भारत में उनका निवास उत्तर प्रदेश के एटा जिले के पटियाली गाँव में था।

   (घ) अमीर सैफुद्दीन लाचीन कबीले से संबंधित थे। वे तुर्किस्तान के रहने वाले थे।

2. देखिए– भाग 1.2

3. देखिए– भाग 1.4

4. (क) बूझ पहेली में उत्तर पहेली में ही निहित होता है, जबकि बिन बूझ पहेली में उत्तर अनुमान और युक्तियों से पाया जाता है।

(ख) 'हिंदवी' का तात्पर्य भाषा के उस रूप से है जो तेरहवीं-चौदहवीं' शताब्दी में हिंदुस्तान की आम जनता द्वारा बोली-समझी जाती थी।

(ग) फारसी भाषा के शब्द सखुन का अर्थ कथन अथवा उक्ति है। खुसरो द्वारा विकसित 'दो सखुने' में दो प्रश्न होते थे जिनका जवाब एक ही होता था।

(घ) अमीर खुसरो ने 'हिंदवी' से अपने संबंध का बयान करते हुए कहा कि मैं हिंदुस्तानी तुर्क हूँ, मैं हिंदुस्तान की तूती हूँ। अगर वास्तव में मुझसे कुछ पूछना चाहते हो तो 'हिंदवी' भाषा में पूछो। मैं तुम्हें 'हिंदवी' में अनुपम बातें बता सकूँगा।

5. देखिए– भाग 1.6

6. देखिए– भाग 1.5

इकाई 2 विद्यापति का काव्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्‌देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विद्यापति का जीवन परिचय

2.3 विद्यापति का समय और रचना संसार

2.4 विद्यापति के काव्य में शृंगार

2.5 विद्यापति के काव्य में भक्ति

2.6 विद्यापति के काव्य में लोक जीवन

2.7 विद्यापति की भाषा और काव्य सौंदर्य

2.8 विद्यापति की कविता का वाचन और आस्वादन

2.9 सारांश

2.10 शब्दावली

2.11 उपयोगी पुस्तकें

2.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्‌देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप :

- महाकवि विद्यापति के संक्षिप्त जीवन-परिचय और उनकी जीवन-कथा से जुड़ी कुछ किंवदंतियों से परिचित हो सकेंगे;
- विद्यापति के रचनात्मक दौर की विविध परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे;
- विद्यापति पदावली में शृंगार के विविध रूपों से परिचित हो सकेंगे;
- विद्यापति पदावली में भक्ति की विविध धाराओं से अवगत हो सकेंगे;
- विद्यापति पदावली में चित्रित प्रेम और सौंदर्य में कवि के जनसरोकार की जानकारी हासिल कर सकेंगे;
- विद्यापति के रचना कौशल, शब्द-संयोजन की छटा, और उनके पद-लालित्य को जान सकेंगे; और
- विद्यापति के कुछ चुने हुए पदों की अर्थ-छवियों से परिचित हो सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्येतिहास में 993 ई. से 1318 ई. (आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार) तक के समय को आदिकाल माना जाता है। काव्य-प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इस युग को जिन बारह ग्रंथों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए वीरगाथाकाल कहा है, उनमें से दो ग्रंथ– 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका', महाकवि विद्यापति की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। ये दोनों कृतियाँ वीरगाथा मानी गई हैं, जबकि 'कीर्तिपताका' शृंगारिक रचना है। परंतु तब से लेकर अब तक के समाज में विद्यापति की लोकप्रियता का मूल आधार शृंगार, भक्ति और वीर-रस से ओत-प्रोत उनकी कोमलकांत 'पदावली' है। विद्यापति भारतीय साहित्य की शृंगार एवं भक्ति परंपरा के प्रमुख स्तंभ थे। राजदरबार से लेकर आम नागरिक के दैनंदिन जीवन तक में उनकी 'पदावली' ने संस्कार की तरह जगह पा ली थी, जिसका प्रभाव आज छह शताब्दी से अधिक का समय बीत जाने के बावजूद बरकरार है। उस दौर की प्रचलित भाषाएँ– संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश

पर उनका मातृभाषा मैथिली के समान अधिकार था। उनकी रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ठ, और मैथिली– तीन भाषाओं में मिलती हैं। उनकी रचनाओं में समकालीन जनजीवन और भाषा का विलक्षण स्वरूप देखा जा सकता है। भक्त समुदाय ने उन्हें वैष्णव और शैव भक्ति के सेतुबंध के रूप में स्वीकारा। 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' का सूत्र देकर उन्होंने लोकभाषा की जनचेतना जाग्रत की। आज भी मैथिल लोकाचारों में उनकी शृंगार और भक्ति की रचनाएँ बरबस गूँजने लगती हैं। आगे इस पाठ में भारतीय साहित्य के प्रस्थान-बिंदु तय करने वाले ऐसे ही महान रचनाकार महाकवि विद्यापति के जीवन और उनकी पदावली पर चर्चा की जा रही है।

2.2 विद्यापति का जीवन परिचय

कवि कोकिल विद्यापति का पूरा नाम विद्यापति ठाकुर था। वे बिसइवार वंश के विष्णु ठाकुर की आठवीं पीढ़ी की संतान थे। उनकी माता गंगा देवी और पिता गणपति ठाकुर थे। वैसे रामवृक्ष बेनीपुरी उनकी माँ का नाम हाँसिनी देवी बताते हैं, पर विद्यापति के पद की भनिता (हासिन देवी पति गरुड़नरायन देवसिंह नरपति) से स्पष्ट होता है कि हाँसिनी देवी महाराज देवसिंह की पत्नी का नाम था। कहते हैं कि गणपति ठाकुर ने कपिलेश्वर महादेव (वर्तमान मधुबनी जिला में अवस्थित) की घनघोर आराधना की थी, तब जाकर ऐसे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।

उनके जन्म-स्थान को लेकर देर तक विवाद चलता रहा। लोग उन्हें बंगला के कवि प्रमाणित करने का कठोर श्रम करते रहे। दरअसल शृंगार-रस से ओत-प्रोत उनकी राधा-कृष्ण विषयक 'पदावली' मिथिला के कंठ-कंठ में व्याप गई थी। उन दिनों विद्याध्ययन करने बंगाल के

शिक्षार्थी मिथिला आया करते थे। काव्य संचरण की प्रक्रिया जो भी रही हो, पर उन्हीं दिनों प्रबल कृष्णभक्त चैतन्य महाप्रभु के कानों में विद्यापति के पदों की मोहक ध्वनि पड़ी। वे मंत्रमुग्ध हो उठे और ढूँढ-ढूँढकर विद्यापति के पद कीर्त्तन की तरह गाने लगे। यह परंपरा चैतन्यदेव की शिष्य-परंपरा में भली भाँति फलित हुई। कई भक्तों ने तो उस प्रभाव में कीर्त्तनों की रचना भी कीं। फलस्वरूप बंगीय पदों में विद्यापति के काव्य-कौशल का वर्चस्व स्थापित हो गया। जब स्थान-निर्धारण की बात चली तो आनन-फानन बंगदेशीय बिस्फी राजा शिवसिंह और रानी लखिमा तलाश ली गईं और विद्यापति को बंगला का कवि प्रमाणित किया जाने लगा। अनुमान किया जा सकता है कि बंगला और मैथिली की लिपियों में कुछ हद तक साम्य होना भी इसमें सहायक हुआ होगा। पर महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, जस्टिस शारदाचरन मित्र, नगेंद्र नाथ गुप्त जैसे बंगीय विद्वानों ने अपनी भागीदारी से यह विवाद समाप्त कर दिया तथा इन्होंने स्पष्ट कहा कि विद्यापति मिथिला-निवासी थे। इस विषय पर सर्वप्रथम डॉ. ग्रियर्सन ने चर्चा शुरू की, और व्यवस्थित तर्क के साथ विद्यापति का बिहारवासी होना प्रमाणित किया।

विद्यापति का जन्म-स्थान बिस्फी (जिला– मधुबनी, मंडल– दरभंगा, बिहार) है। राज्याभिषेक के लगभग तीन माह बाद राजा शिवसिंह ने श्रावण सुदि सप्तमी, वृहस्पतिवार, लं.सं. 293 (1403 ई.) को ताम्रपत्र लिखकर गजरथपुर का यह गाँव बिस्फी विद्यापति को दिया था।

महापुरुषों के जीवन-मृत्यु का काल निर्धारित करते समय अक्सर हमारे यहाँ दुविधा रहती है, विद्यापति उसके अपवाद नहीं हैं। विद्वानों ने इस पर पर्याप्त तर्क-वितर्क किया है। किंतु अवहट्ठ में लिखी उन्हीं की एक कविता की कुछ प्रारंभिक पंक्तियों के आधार पर

उनका जन्म 1350 ई. (लक्ष्मण संवत 241, शक संवत 1272) तय होता है। इससे अधिक प्रमाणिक कोई गणना नहीं हो सकती।

विद्यापति बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि और रचनाधर्मी स्वभाव के थे। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा महामहोपाध्याय हरि मिश्र से हासिल की। उनके भतीजे महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र विद्यापति के सहपाठी थे। दस-बारह वर्ष की बाल्यावस्था से ही वे अपने पिता गणपति ठाकुर के साथ महाराज गणेश्वर के दरबार में जाने लगे थे। उनकी प्रसिद्ध कृति 'कीर्तिलता' में चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के मिथिला के क्षेत्रीय जनजीवन की अराजक स्थिति का दारुण विवरण दर्ज है। 'बालचंद विज्जावड़ भासा, दुहु नहि लग्गड़ दुज्जन हासा' जैसी गर्वोक्ति से विद्यापति के आत्मविश्वास के साथ-साथ यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि इससे पूर्व उनकी कोई महत्वपूर्ण रचना प्रकाश में नहीं आई थी। इन पंक्तियों का एक निहितार्थ यह भी लगाया जा सकता है कि विद्वत्समाज में ईर्ष्या वश विद्यापति के लिए कुछ अवांछित टिप्पणियाँ भी हुई होंगी, जिस कारण उन्हें सज्जन-दुर्जन की घोषणा करनी पड़ी होगी। 'कीर्तिपताका' का रचनाकाल भी यही माना जाता है, जबकि इस कृति की अंतिम पुष्पिका में शिवसिंह का यशोगान हुआ है।

उनके पद 'भनइ विद्यापति सुनु मंदाकिनि' तथा 'दुल्लहि तोहर कतए छथि माए' से ज्ञात होता है कि उनकी पत्नी का नाम मंदाकिनि और पुत्री का नाम दुल्लहि था। उनके पुत्र का नाम हरपति और पुत्रवधू का नाम चंद्रकला था। 1439 ई. (लक्ष्मण संवत् 329) के कार्तिक धवल त्रयोदशी के दिन महाकवि विद्यापति का अवसान हुआ। किंवदंतियों में सुना जाता है कि उनकी चिता पर अकस्मात शिवलिंग प्रकट हो गया। वहाँ आज भी शिवमंदिर है। फागुन महीने में वहाँ मेला लगता है। पहले वहाँ छोटा-सा मंदिर हुआ करता था, बहुत बाद के दिनों

में बालेश्वर चौधरी नामक किसी जमींदार ने वहाँ बड़ा-सा मंदिर बनवाकर, महाकवि विद्यापति का नामोनिशान मिटाकर उस मंदिर का नाम बालेश्वरनाथ रख दिया। सुना यह भी जाता है कि बी.एन.डब्ल्यू. रेल पटरी का प्रारंभिक नक्शा विद्यापति की चिता से गुजर रहा था। रेलपथ निर्माण हेतु जब वहाँ के पेड़ों की डालें काटी जानी लगीं, तो टहनियों से खून निकलने लगे, और रेल-निर्माण के इंजीनियर घनघोर रूप से बीमार पड़ गए। फिर वहाँ रेलपथ को टेढ़ा किया गया।

2.3 विद्यापति का समय और रचना संसार

विद्यापति का युग न केवल मिथिला के लिए, बल्कि पूरे भारतवर्ष के लिए सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक– हर दृष्टि से उथल-पुथल से भरा था। सिलसिलेवार आक्रमण के कारण पूरा जनजीवन हर समय दहशत में पड़ा रहता था। दिल्ली से लेकर बंगाल तक की यात्रा में आक्रमणकारियों और आक्रांताओं के जय-पराजय की तो अपनी स्थिति थी, पर उस दहशत में सामान्य नागरिक भी मन से व्यवस्थिति नहीं रह पाते थे। आक्रमण को जाते हुए उत्साह में और लौटते समय पराजय की हताशा में सैनिक कहाँ – कितना – किसको आहत करते थे, उन्हें पता नहीं होता। पीढ़ी-दर-पीढ़ी अहंकार-तुष्टि और वर्चस्व-स्थापना के लिए तरह-तरह के गठबंधन बन रहे थे। सामंतों को भी तो अपनी अस्मिता कायम रखनी होती थी। पर इन सबके बीच साहित्य एवं कला के लिए जगह भी बनती रहती थी। जाति-व्यवस्था और कठोर हो रही थी, पर राजनीतिक दृष्टिकोण से उसमें परिवर्तन की अपेक्षा देखी जा रही थी। हिंदू-मुसलमान के बीच एक-दूसरे को समझने की नई दृष्टि विकसित हो रही थी। आर्थिक-सामाजिक जरूरतों के चलते दोनों एक-दूसरे के करीब आ रहे थे। कला, साहित्य, संस्कृति,

धर्म तथा दर्शन संबंधी मान्यताओं को लेकर दोनों के बीच संवाद की बड़ी जरूरत आन पड़ी थी; जिसमें साहित्य की महती भूमिका अनिवार्य थी। ऐसे समय में विद्यापति की अन्य रचनाओं का जो योगदान है, वह तो है ही, उनकी 'पदावली' ने प्रेम, भक्ति और नीति के सहारे बड़ा काम किया। पदलालित्य, माधुर्य, भाषा की सहजता, मोहक गेयधर्मिता से मुग्ध होकर समकालीन और अनुवर्ती साहित्य-कला प्रेमी एवं भक्तजन भाषा, भूगोल, संप्रदाय, मान्यता, जाति-धर्म के बंधन तोड़कर विद्यापति के पद गाने लगे थे। उनका एक घोर शृंगारिक पद है– 'कि कहब हे सखि आनंद ओर, चिर दिने माधव मंदिर मोर...' (हे सखि, बहुत दिनों बाद माधव मुझे अपने कक्ष में मिले, मैं अपने उस आनंद की कथा तुम्हें क्या सुनाऊँ!)। किंतु चैतन्य महाप्रभु इस पद को गाते-गाते इस तरह विभोर हो जाते थे कि उन्हें मूर्छा आ जाती थी।

विद्यापति एक तरफ ओयनबार वंश के कई राजाओं की शासकीय नीति देखकर अनुभव-संपन्न हुए थे, तो दूसरी तरफ समकालीन आर्थिक, राजनीतिक, शासकीय परिस्थितियों के बीच लोक-वृत्त के सूक्ष्म मनोभावों को अनुरागमय दृष्टि से देख रहे थे। दरबार संपोषित रचनाकार होने के बावजूद चारणवृत्ति उनका स्वभाव न था। सिलसिलेवार आक्रमण के बर्बर समय में दहशतपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे जनमानस की जैसी दशा वे देख रहे थे, उसमें बड़े कौशलपूर्ण ढंग से सामाजिक दायित्व निभाने की जरूरत थी। इतिहास साक्षी है कि हर काल के बुद्धिजीवी समकालीन समाज और शासन के दिग्दर्शक होते आए हैं। प्रत्यक्ष परिस्थितियों में स्पष्टतः उपस्थिति शासकीय उन्माद और लोक जीवन की हताशा को अनदेखा कर नए संबंधों की सुस्थापना हेतु सौंदर्य और प्रेम से बेहतर कुछ भी नहीं होता; फलस्वरूप विद्यापति ने प्रेम को ही अपने रचना-संधान का मुख्य विषय बनाया। संस्कृत, अवहट्ठ और

मैथिली– तीन भाषाओं में रचित उनकी रचनाएँ गवाह हैं कि वे कर्मकांड, धर्मशास्त्र, दर्शन, न्याय, सौंदर्यशास्त्र, संगीतशास्त्र आदि के प्रकांड पंडित थे। भक्ति रचना, श्रृंगारिक रचनाओं में मिलन-विरह के सूक्ष्म मनोभाव, रति-अभिसार के विशद चित्रण, कृतित्व-वर्णन से राजपुरुषों का उत्साह वर्द्धन और नीति शास्त्रों द्वारा उन्हें कर्त्तव्यबोध देना, सामान्य जनजीवन के आहार-व्यवहार की पद्धतियाँ बताना आदि हर क्षेत्र की समीचीन जानकारियाँ उनकी कालजयी रचनाओं में दर्ज हैं। शास्त्र और लोक के संपूर्ण विस्तार पर उनका असाधारण अधिकार था। उनकी प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ हैं– 'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका', 'भूपरिक्रमा', 'पुरुष परीक्षा', 'लिखनावली', 'गोरक्ष विजय', 'मणिमंजरी नाटिका', 'पदावली'। धर्मशास्त्रीय प्रमुख कृतियाँ हैं– 'शैवसर्वस्वसार', 'शैवसर्वस्वसार-प्रमाणभूत संग्रह', 'गंगावाक्यावली', 'विभागसार', 'दानवाक्यावली', 'दुर्गाभक्तितरंगिणी', 'वर्षकृत्य', 'गयापत्तालक'। इन सब में सर्वाधिक लोकप्रिय रचना उनकी 'पदावली' मानी गई।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के साथ उत्तर के रूप में दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प का चुनाव कीजिए।

   (क) 'कीर्तिपताका' किस प्रकार की रचना है?

   (i) हास्यपरक (ii) नीतिपरक (iii) श्रृंगारिक (iv) भक्तिपरक

   (ख) विद्यापति की रचनाएँ इनमें से किस भाषा में नहीं मिलती हैं?

(i) संस्कृत (ii) अवधी (iii) अवहट्ठ (iv) मैथिली

(ग) विद्यापति की किस रचना में चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के मिथिला क्षेत्र की अराजक स्थिति का वर्णन मिलता है?

(i) पदावली (ii) कीर्तिलता (iii) पुरूष परीक्षा (iv) गोरक्ष विजय

(घ) किसके संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वे विद्यापति के पद को गाते-गाते मूर्छित हो जाते थे?

(i) चैतन्य महाप्रभु (ii) नामदेव (iii) नंददास (iv) इनमें से कोई नहीं।

(ङ) मैथिली भाषा के अतिरिक्त अन्य किस भारतीय भाषा के लोगों ने विद्यापति को अपनी भाषा का कवि माना?

(i) मराठी (ii) राजस्थानी (iii) सिंधी (iv) बंगला

2. विद्यापति की प्रमुख रचनाओं का परिचय दस पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 विद्यापति के काव्य में शृंगार

विद्यापति की 'पदावली' के पद दो तरह के हैं– शृंगारिक पद और भक्ति पद। इसके अलावा कुछ ऐसे पद भी हैं, जिनमें प्रकृति, समाज, नीति, संगीत आदि जीवन-मूल्यों को रेखांकित किया गया है। शृंगारिक पदों में वयःसंधि, नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, मिलन-अभिसार, मान-मनुहार, संयोग-वियोग, विरह-प्रवास आदि का विलक्षण चित्र उकेरा गया है। ऐसे पदों की संख्या साढ़े सात सौ से अधिक है। उल्लेखनीय है कि अपने प्रिय सखा राजा शिवसिंह के तिरोधान (1406 ई.) के बाद से विद्यापति ने कोई शृंगारिक पद नहीं रचा; बाद के समय की उनकी सारी ही रचनाएँ भक्ति-प्रधान पद हैं, या फिर नीति, शास्त्र, धर्म, आचार से संबंधित विचार। भक्ति-प्रधान पदों की संख्या लगभग अस्सी हैं; जिसमें शिव-पार्वती लीला, नचारी, राम-वंदना, कृष्ण-वंदना, दुर्गा, काली, भैरवि, भवानी, जानकी, गंगा वंदना आदि शामिल हैं। शेष पदों में ऋतु-वर्णन, बेमेल विवाह, सामाजिक जीवन-प्रसंग, रीति-नीति-संभाषण-शिक्षा आदि रेखांकित है।

उनके शृंगारिक पदों के प्रेम और सौंदर्य-विवेचन के आधार राधा-कृष्ण विषयक पद हैं। गौरतलब है कि पूरे भारतीय वाङ्मय में राधा-कृष्ण की उपस्थिति पौराणिक गरिमा और विष्णु के अवतार– कृष्ण की अलौकिक शक्ति एवं लीला के साथ है। पर, विद्यापति के राधा-कृष्ण

अलौकिक नहीं हैं, पूरी तरह लौकिक हैं, उनके प्रेम-व्यापार के सारे प्रसंग सामान्य नागरिक की तरह हैं। पूरी 'पदावली' में प्रेम और सौंदर्य वर्णन के किसी बिंदु पर वे आत्मलीन नहीं दिखाई देते। हर पद में रसज्ञ और रसभोक्ता के रूप में किसी न किसी राजा, सुलतान की दुहाई देते हैं; या नायक-नायिका को प्रबोधन-उपदेश देते हैं। पूरी 'पदावली' में प्रेम-व्यापार के हर उपक्रम– विभाव, अनुभाव, दर्शन, श्रवण, अनुरक्ति, संभाषण, स्मरण, अभिसार, विरह, वेदना, मिलन, उल्लास, सुरति-चर्चा, सुरति-बाधा, आशा-निराशा या फिर सौंदर्य-वर्णन के हर स्वरूप– नायिका भेद, वयःसंधि, सद्यःस्नाता, कामदग्धा, नवयौवना, प्रगल्भा, आरूढ़ा, स्वकीया, परकीया आदि को रेखांकित करते हुए विद्यापति सतत तटस्थ ही दीखते हैं। पूरी 'पदावली' में विद्यापति भगवद्गीतोपदेश के कृष्ण की तरह लिप्त होकर भी निर्लिप्त प्रतीत होते हैं। हर समय वे अपने नायक-नायिका के मनोभावों को रेखांकित कर एक संदेश देते हुए दीखते हैं। जीवन में सौंदर्य और प्रेम के शिखरस्थ स्वरूप को रेखांकित करते हुए वे सभी पदों में जीवन-मूल्य का संदेश देते प्रतीत होते हैं। नागरिक मन से हताशा मिटाने और राजाओं, सुलतानों के हृदय में मानवीय कोमलता भरने का इससे बेहतर उपाय संभवतः उस दौर में और कुछ नहीं हो सकता था। इसलिए विद्यापति रचित 'पदावली' के अनुशीलन की पद्धति उसमें चित्रित प्रेम-प्रसंग और सौंदर्य-निरूपण में कामुकता से परांग्मुख होकर जीवन-मूल्य की तलाश होनी चाहिए। आम नागरिक की तरह उनकी नायिका विरह में व्यथित-व्याकुल होती है और नायक का स्मरण करती है, उन्हें पाने का उद्यम करती है, किसी तरह की अलौकिकता उनके प्रेम को छूती तक नहीं। उन्हें चंदन-लेप भी विष-बाण की तरह दाहक लगता है, गहने बोझ लगते हैं, सपने में भी कृष्ण दर्शन नहीं देते, उन्हें अपने जीने की स्थिति शेष नहीं दीखती। अंत में कवि नायिका को गुणवती बताकर मिलन की सांत्वना के साथ प्रबोधन देते हैं। मिलन की

स्थिति में प्रेमातुर नायिका सभी प्रकार से सुखानुभव लेती है। भावोल्लास से भरी नायिका अपने प्रियतम की उपस्थिति का सुख अलग-अलग इंद्रियों से प्राप्त कर रही है– रूप निहारती है, बोल सुनती है, वसंत की मादक गंध पाती है, यत्नपूर्वक क्रीड़ा-सुख में लीन होती है, रसिकजन के रसभोग का अनुमान करती है। जाहिर है कि योजनाबद्ध ढंग से अपनी रचनाशीलता में आगे बढ़ रहे कवि को अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विलक्षण रूप से संपन्न भाषा के साथ-साथ अभिव्यक्ति के सभी अवयवों पर पूर्ण अधिकार था।

2.5 विद्यापति के काव्य में भक्ति

भक्ति और शृंगार– भले ही दो भाव हों, पर दोनों का उत्स एक ही है। दोनों का मूल अनुराग और समर्पण है। दोनों ही भाव व्यक्ति के मन में प्रेम से शुरू होते हैं। वैसे तो अभी भी कुछ लोग मिल जाएँगे जो भक्ति और प्रेम को दो दिशाओं का व्यापार मानते हैं। वे सोचते हैं कि जब तक मनुष्य को ज्ञान नहीं होता, युवावस्था के उन्माद में वह स्त्री के रूप जाल में मोहवश फँसा रहता है, भोग में लिप्त रहता है; जब आँखें खुलती हैं, ज्ञान चक्षु खुलते हैं, तब वह भक्ति-भाव से ईश्वर की ओर मुड़ता है। पर ऐसा सोचना सर्वथा उचित नहीं है। वास्तविक अर्थों में दोनों ही उपक्रमों का प्रस्थान बिंदु एक ही है, व्यापार क्रम एक ही है। दोनों का क्रिया-व्यापार प्रेम के कारण ही होता है और दोनों ही में समर्पण भाव रहता है, स्वीकार भाव रहता है। प्रेम में प्रेमिका, प्रेमी के प्रति समर्पित होती है या प्रेमी प्रेमिका के प्रति, ठीक इसी तरह भक्ति में भक्त, भगवान के प्रति समर्पित होते हैं। मीरांबाई की काव्य साधना का उदाहरण हमारे सामने है, उन्हें कृष्ण की प्रिया मानें अथवा कृष्ण की भक्त, संशय हर स्थिति में मौजूद रहेगा।

विद्यापति की 'पदावली' में भक्ति और शृंगार के बीच की विभाजक रेखा को समझना थोड़ा कठिन है। माधव की प्रार्थना 'तोहि जनमि पुनु तोहि समाओत, सागर लहरि समाना' में भक्ति और शृंगार के इस सघन भाव को समझा जा सकता है। उत्स में विलीन हो जाने का यह एकात्म, आत्मा और परमात्मा की यह एकात्मता उनके यहाँ शृंगारिक पदों में बड़ी आसानी से मिलती है। अपने प्रेम-इष्ट के प्रति उपासिका का समर्पण इसी तरह का भक्तिपूर्ण समर्पण है।

अन्य भक्तिकालीन कवियों की तरह विद्यापति के यहाँ न तो स्पष्ट एकेश्वरवाद दिखेगा, न ही अन्य शृंगारिक कवियों की तरह लोलुप भोगवाद। एक डूबे हुए काव्य रसिक के इस समर्पण में ऐसी जीवनानुभूति है कि कहीं भक्ति, शृंगार पर और ज्यादातर जगहों पर शृंगार, भक्ति पर चढ़ता नजर आता है। उनके यहाँ भक्ति और शृंगार की धाराएँ कई-कई दिशाओं में फूटकर उनके जीवनानुभव को फैलाती हैं और कवि के विराट अनुभव संसार को दर्शाती हैं।

भक्ति और शृंगार के जो मानदंड आज के प्रवक्ताओं की राय में व्याप्त हैं, उस आधार पर महाकवि विद्यापति के काव्य संसार को बाँटें, तो राधा-कृष्ण विषयक ज्यादातर गीत शृंगारिक हैं, पर जो भक्ति गीत हैं, उनमें प्रमुख हैं– शिव स्तुति, गंगा स्तुति, काली वंदना, कृष्ण प्रार्थना आदि। भक्ति और शृंगार के विषय में वस्तुतः हमने कुछ धारणाएँ बद्धमूल कर ली हैं। विद्यापति के नख-शिख वर्णनों के कारण कुछ लोगों को उनकी भक्ति-भावना पर ही शक होने लगता है। पर विद्यापति के काव्य को समझने के लिए तत्कालीन काव्य की मर्यादाओं को समझना जरूरी है। विद्यापति के यहाँ जब-तब भक्तिपरक पदों में शृंगार और भक्ति का संघर्ष भी परिलक्षित होता है। शृंगारिक गीतों में सौंदर्य, समर्पण, रमण, विलास, विरह, मिलन के इतने

पक्षों में तल्लीन विद्यापति; 'की यौवन पिय दूरे' के कवि विद्यापति; भक्तिपरक गीतों में एकदम से विनीत हो जाते हैं; पूर्व में किए गए रमण-विलास को सर्वथा निरर्थक बताते हुए 'तोहे भजब कोन बेला' कहकर पछताते हैं; 'तातल सैकत वारि बिंदु सम सुत मित रमणि समाजे' कह देते हैं। शृंगारिक गीतों की नायिका के मनोवेग को जीवन देनेवाले विद्यापति उस 'रमणि' को तप्त बालू पर पानी की बूँद के समान कहकर भगवान के शरणागत होते हैं। 'अमृत तेजि किए हलाहल पीउल' कहकर महाकवि स्वयं शृंगार और भक्ति के सारे द्वैध को खत्म कर देते हैं। यहाँ कवि की शालीनता स्पष्ट दीखती है। दो कालखंडों और दो मनःस्थितियों में एक ही रचनाकार द्वारा रचनाधर्म का यह फर्क कवि का पश्चाताप नहीं, उनकी तल्लीनता प्रदर्शित करता है कि वह जहाँ कहीं है, मुकम्मल है।

2.6 विद्यापति के काव्य में लोक जीवन

विद्यापति का रचना-फलक बहुआयामी था। जीवन व्यवहार के हर पहलू पर उनकी दृष्टि सावधान रहती थी। दरबार-संपोषित होने के बावजूद उनका एक भी रचनात्मक उद्यम कहीं चारण-धर्म में लिप्त नहीं हुआ। हर रचना से उन्होंने समकालीन चिंतक, सामाजिक अभिकर्ता, और राजकीय सलाहकार की प्रखर नैतिकता का निर्वाह किया। लोक जीवन की व्यावहारिकता, लालित्यपपूर्ण अर्थोत्कर्ष तथा चमत्कारिक सांगीतिकता से भरे उनके पद आम जन जीवन में अत्यंत लोकप्रिय हुए। उनकी पदावली में व्यक्ति के सामाजिक जीवन-यापन के अनेक प्रकरण– जन्म, नामकरण, मुंडन, उपनयन, विवाह, पूजा-पाठ, लोकोत्सव आदि उपलब्ध हैं। आज भी मैथिल जन जीवन का कोई उत्सव विद्यापति के गीत के बिना संपन्न नहीं होता। रचनाकाल की सुनिश्चित जानकारी उपलब्ध न होने के बावजूद कहा जा सकता

है कि ये पद एक लंबे समय-फलक में रचित हैं। मिथिला समेत पूरे पूर्वांचलीय प्रदेशों– बंगाल, असम एवं उड़ीसा में वैष्णव साहित्य के विकास में भाव एवं भाषा माधुर्य के कारण विद्यापति की 'पदावली' का अपूर्व योगदान रहा है। वैष्णव भक्तों के प्रयास से इन गीतों का प्रचार-प्रसार मथुरा-वृंदावन तक हुआ। प्राप्त जानकारी के अनुसार उनके पदों की संख्या लगभग नौ सौ हैं। शिवसिंह के तिरोधान के बाद अनेक वर्षों तक उन्होंने सांस्कृतिक रूप से समृद्ध क्षेत्र नेपाल की तराई, राजबनौली में रहकर रचनाकर्म किया।

बोध प्रश्न

3. निम्नलिखित प्रश्नों के आगे सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाइए।

(क) विद्यापति की 'पदावली' में सिर्फ शृंगारिक रचनाएँ हैं। ( )

(ख) विद्यापति के पदों में शृंगार-विवेचन का आधार राधा-कृष्ण का प्रेम है। ( )

(ग) 'पदावली' में विद्यापति ने अपने समय के नायक और नायिका के मनोभावों को पिरोया है। ( )

(घ) विद्यापति के भक्तिपरक पदों में शृंगार और भक्ति का द्वंद्व भी दिखाई देता है। ( )

(ङ) विद्यापति की भक्ति सिर्फ कृष्ण तथा शिव को निवेदित है। ( )

4. 'किसी तरह की अलौकिकता विद्यापति के प्रेम को छूती तक नहीं है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

5. विद्यापति की भक्ति की प्रमुख विशिष्टताओं को रेखांकित कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

6. विद्यापति के काव्य में अभिव्यक्त लोक जीवन की विविधताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

2.7 विद्यापति की भाषा और काव्य सौंदर्य

'पदावली' की भाषा मैथिली है, जबकि अन्य रचनाओं की भाषा संस्कृत एवं अवहट्ठ। पदों का संकलन तीन भिन्न-भिन्न भाषिक समाज– मिथिला, बंगाल और नेपाल के लिखित एवं मौखिक स्रोतों से हुआ है। भाषिक संरचना के गुणसूत्रों से परिचित सभी लोग इस बात से सहमत होंगे कि रचनाकार से मुक्त हुई गेयधर्मी रचना लोक-कंठ में वास करती हुई अनचाहे में भी कुछ-न-कुछ अपने मूल स्वरूप से भिन्न हो जाती है और फिर संकलक तक आते-आते उसमें स्थानीयता के कई अपरिहार्य रंग चढ़ जाते हैं। लोक-कंठ से संकलित सामग्री का तो यह अनिवार्य विधान है! विद्यापति 'पदावली' इसका अपवाद नहीं है। चौदहवीं से बीसवीं शताब्दी तक के छह सौ वर्षों की यात्रा में इन पदों में कब, कहाँ और किनके कौशल से क्या जुड़ा, क्या छूटा, यह जान पाना मुश्किल है। इसके अलावा एक तथ्य यह भी है कि इन पदों के प्रारंभिक संकलनकर्ताओं की मातृभाषा मैथिली नहीं थी। इसलिए ध्वनियों, शब्दों, पदों और संदर्भ-संकेतों को लिखित रूप में व्यक्त करते हुए निश्चय ही परिवर्तन आ गया होगा। पर यह तथ्य है कि विद्यापति के जीते जी 'पदावली' की पंक्तियाँ मुहावरों और कहावतों की श्रेणी पा गई थीं। जीवनोपयोगी विषय एवं सांगीतिकता के अलावा 'पदावली' की इस लोकप्रियता में लोक-रंजक भाषा की उल्लेखनीय भूमिका है। इनके एक-एक पद कई-कई रागों में गाए जाते हैं।

विद्यापति के सभी पद मात्रिक सम छंद में रचित हैं। अधिकांश पदों की रचना एक ही छंद में हुई है; पर कई पदों में मिश्रित छंद का भी उपयोग हुआ है; अर्थात दो-तीन या अधिक छंदों के चरणों का मेल किया गया है। लगभग सत्रह छंद– अहीर, लीला, महानुभाव, चंडिरका, हाकलि, चौपई, चौपाई, चौबोला, पद्धरि, सुखदा, उल्लास, रूपमाला, नाग, सरसी, सार, मरहठामाधवी, झूलना आदि का स्वतंत्र प्रयोग; और अखंड, निधि, शशिवदना, मनोरम, कज्जल, रजनी, गीता, गीतिका, विष्णुपद, हरिगीतिका, ताटंक, वीरछंद, समानसवैया जैसे छंदों के चरणों को अन्य छंदों में जोड़कर किया गया है। उल्लेख मिलता है कि उल्लास, नाग, रंजनी, गीता छंद के निर्माता विद्यापति ही हैं; क्योंकि उनसे पूर्व के किसी रचनाकार के यहाँ ये चारो छंद नहीं दीखते।

बोध प्रश्न

7. विद्यापति के काव्य-सौंदर्य के प्रमुख पक्षों को रेखांकित कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

2.8 विद्यापति की कविता का वाचन और आस्वाादन

कविता का वाचन

देखिए– परिशिष्ट

कविता आस्वादन

- **नन्दक नन्दन कदम्बक तरू-तर,/धिरे-धिरे मुरलि बजाव। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ विद्यापति के 'पदावली' से ली गई है। इसमें राधा के प्रति कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया गया है।

व्याख्या

इस पद में कृष्ण (नंद के नंदन) की विरह-दशा का वर्णन है। वे वंशी बजाकर प्रियतमा राधा को मिलन-स्थल पर संकेत से बुला रहे हैं। कदंब के पेड़ तले कृष्ण धीरे-धीरे वंशी बजा रहे हैं। वे बार-बार वंशी बजाकर, घर बैठी प्रियतमा (निकेतन बइसल) को मिलन-स्थल और समय का संदेश भेज रहे हैं (अनुमान सहज है कि मिलन हेतु प्रेमी-प्रेमिका के बीच इस तरह के संकेत का अनुबंध पिछली मुलाकात में हो गया होगा)। यहाँ राधा को संबोधित करते हुए कहा गया है कि हे साँवरि! तुम्हारे प्रियतम कृष्ण तुमसे मिलने के लिए व्याकुल (विकल) हैं। यमुना तट के उपवन में उनके मन में ऐसा उद्वेग उठा है कि बार-बार उधर ही मुड़-मुड़कर तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। दूध-दही-मक्खन (गोरस) बेचने जाती-आती हर गोपी से तुम्हारे बारे में वे पूछते रहते हैं। विद्यापति कहते हैं कि हे साँवरि! तुम तो परम बुद्धिमती (मतिमान)

हो, मेरी बात सुनो! सुबुद्धि (सुमति) संपन्न मधुसूदन पर भरोसा करो और उनकी अनुरक्ति, स्वीकारो।

विशेष

(i) भाषा मैथिलि है।

(ii) यद्यपि भारतीय समाज में राधा-कृष्ण ईश्वर के रूप में स्वीकार किए गए हैं, पर यहाँ प्रेम वर्णन में दिव्यता नहीं है वरन वह लोक जीवन के अनुरूप है।

- **देख देख राधा रूप अपार। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ विद्यापति के 'पदावली' से ली गई है। इस पद्य में राधा के सौंदर्य की अतुलनीयता का वर्णन किया गया है।

व्याख्या

इस पद में कवि अपूर्व सुंदरी राधा की रूपराशि देख कर चकित हैं। भूतल के समस्त सौंदर्य (लावण्य) का सार मिलाकर न जाने किस विधि विधाता ने इस नायिका के सौंदर्य की रचना की! इसके अंग-अंग का सौंदर्य देखकर मनुष्य की कौन कहे, सौंदर्य के देवता कामदेव (अनंग) तक का मन अधीर (अथीर) हो जाएगा, चंचल हो जाएगा, अपने सौंदर्य का उनका अहंकार टूट जाएगा। कामदेव के सौंदर्य का करोड़ों बार मंथन करने वाले जन को भी पृथ्वी पर निराश होकर गिरना पड़ेगा क्योंकि राधा के अपूर्व सौंदर्य के समान सौंदर्य कहीं नहीं

मिलेगा। इस सुमुखि के सौंदर्य को निहारकर लोग विभोर होते रहेंगे और इनके चरणों में लाखो-करोड़ो धन (लखिमि–लक्ष्मी) न्योछावर करते रहेंगे। विभोर हो-होकर मन ही मन अभिलाषा करते रहेंगे कि दिन रात इन चरणों की सेवा में लीन रहें, इन चरणों की पहरेदारी करते रहें।

- **माधव की कहब सुन्दरि रूपे। ...**

व्याख्या

विद्यापति के पदों में राधा के रूप-सौंदर्य का वर्णन देखते ही बनता है। वयःसंधि वाले पदों में नायिका की उम्र के क्रमिक विकास को रेखांकित करते हुए उन्होंने शारीरिक परिवर्तन का माँसल चित्र अत्यंत विलक्षणता से उकेरा है। रोचक प्रसंग यह है कि इस वर्णन में गहन माँसलता भरने हेतु वे प्रकृति-चित्र का अद्‌भुत परिपाक करते हैं। सौंदर्य निरूपण की यह विलक्षणता तब और निखर उठती है जब वयःसंधि के ऐसे वर्णन में राधा के मनोभाव भी स्पष्ट होने लगते हैं। इस वर्णन में कवि का वह कौशल स्पष्ट हो उठता है जिसमें वे रूपगर्विता नायिका का मनोवेग भी उकेर देते हैं। कवि कहते हैं कि हे माधव! उस सुंदरी राधा के रूप का वर्णन मैं क्या करूँ! न जाने विधाता ने कितने जतन से राधा का रूप सँवारा है, उन्हें देखकर नयन तृप्त हो जाते हैं। दोनों पैर कमल (पुष्प) के समान सुंदर हैं, चलती हैं तो प्रतीत होता है कि कोई मदमस्त हथिनी आ रही हो। स्वर्णवर्णी (कनक) केले के थंभ जैसी तराशी हुई जाँघों के ऊपर सिंह जैसी कमर और उसके ऊपर मेरु-समान दो वक्ष अतीव मनोहर हैं। उस मेरु (पर्वत) से ऊपर (मुखमंडहल में) कमल के समान खिली हुई दो आँखें कमलनाल के बिना भी रुचिकर लग रही हैं। गले में पड़ी हुई मणि-माणिक्य के हार बहुधारा

वाली गंगा (सुरसरि) लग रहे हैं, संभवतः इस सुरसरि के सान्निध्य से ही ये नालविहीन कमल जल के बिना भी सूख नहीं रहे हैं। उनके होठ बिंबा फल के समान और दंतपंक्ति अनार के दानों के समान सघन, सुगठित हैं, देदीप्यमान हैं। प्रतीत होता है कि सूर्य और चंद्रमा (रवि ससि) एक साथ पास-पास विराजमान हैं। सूर्य के प्रकाश से कमल तो खिल रहे हैं किंतु चंद्रमा को ग्रसित करने वाले राहु इतने दूर बसे हुए हैं कि वे निकट नहीं आ पाते, इसलिए इस चंद्रमा को ग्रहण लगने की भी कोई आशंका नहीं है।

इससे आगे कवि एक ही शब्द (सारंग) का श्लेषपूर्ण उपयोग कर नायिका के केलि-वर्णन में चमत्कार भर देते हैं। 'सारंग' शब्द के कई अर्थ– हरिण, कोयल, कामदेव, स्तन, चंद्रमा आदि का अनुपम अर्थोत्कर्ष यहाँ दर्ज है। कवि कहते हैं कि नायिका की आँखों का सौंदर्य हरिण-नयन के समान है, कंठ-ध्वनि कोयल के मधुर स्वर के समान, तीर-कमान जैसी भौंहों को देखकर प्रतीत होता है कि साक्षात कामदेव धनुष तानकर निशाना साधे हुए हैं। केलि के दौरान दोनों स्तनों पर उभरे दसों नाखूनों के वक्राकार निशान उग आए दस-दस चंद्रमा लग रहे हैं। और इस तरह केलि का मधुरसपान हो रहा है। 'दस सारंग' का अर्थ कुछ लोग मुखमंडल पर झूल रही केशराशि की दसेक लटें भी लगाते हैं। इस पूरे चित्र के निरूपण के बाद कवि विद्यापति कहते हैं कि सुंदरी! आपके समान मोहक रूप इस जगत में किसी और का नहीं है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण के मोहक रूप का वास्तविक ज्ञान राधा को है, उसी प्रकार राजा शिवसिंह रूप के नारायण हैं और उसका संपूर्ण ज्ञान उनकी रानी लखिमा देवी को है।

- **सुधामुखि के विहि निरमिल बाला। ...**

व्याख्या

इस पद में विद्यापति अपूर्व सुंदरी नायिका के विभिन्न अंगों का वर्णन करते हैं। रूपराशि की छटा से चकित होकर कवि कहते हैं कि चंद्रमा के समान शीतल और अमृत के समान सुखकारी इस सुधामुखि बाला का सृजन विधाता ने न जाने कैसे किया! ऐसा त्रिभुवन विजयी अपूर्व, मनभावन और मंगलमय रूप तो अन्यत्र दुर्लभ है। सुंदर मुखमंडल, काजर-रंजित चंचल आँखें; प्रतीत होता है कि स्वर्ण-कमल (कनक-कमल) के बीच कोई काल-भुजंग अठखेलियाँ कर रहा हो, सौंदर्य और चंचलता की प्रतिमूर्ति दो खंजन आपस में खेल कर रहे हों। यहाँ स्वर्ण-कमल का उपमान कवि ने नायिका के गौर-वर्ण मुखमंडल से लिया है। नाभि-विवर से ऊपर की ओर जाती हुई त्रिवली (रोमावली) को कवि ने नागराज (भुजगि– भुजंग) कहा है, जो सुंदरी नायिका के निःश्वास (निसास) से छूटी मादकता का प्यासा है; और उधर ही बढ़े जा रहा है; किंतु नायिका की नुकीली नाक देखकर उसे गरुड़ की चोंच का भ्रम होता है; और तुरंत वह वक्षों की संधि में (गिरि-संधि) में छिप जाता है। कामदेव के धनुष से निकले तीर तीन लोकों में सबसे प्रहारक होते हैं। इस तीर के शिकार किसी तरह बच नहीं सकते। इस तीर में तीन दिशाओं में तीन कोने माने गए हैं, जो क्रमशः तीनों लोकों के प्रतीक माने गए हैं। पुराण कथाओं में कामदेव के नयनों को बाण या तीर की संज्ञा दी गई है। उनकी भौंहों को कमान की संज्ञा दी गई है। विधाता के विचित्र विधान पर कवि को कौतुक होता है कि नायिका के इस मदनोन्मत्त तीन ही बाण से रसिक जन को ऐसा आहत करते हैं कि उनके समक्ष कोई विकल्प नहीं रह जाता। इसलिए यह सारा कुछ उन्हें ही सौंपकर कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुमुखि! इस रस का विधान कोई कैसे बताए, राजा शिव सिंह रूपनारायण हैं और लखिमा देवी का सौंदर्य इसका प्रमाण है।

- **ससन-परस खसु अम्बर रे/देखल धनि देह। ...**

व्याख्या

नायिका के सौंदर्य वर्णन का यह चमत्कारिक पद है। विलक्षण प्रतिमानों द्वारा यहाँ नायिका के रूप-रंग का चित्रण हुआ है। श्वासोच्छवास की सिहरन से, या वसंतमंजरी के स्पंदन से, या मंद पवन की थपकन से, या उरोजों की थिरकन से, या हृदय की धड़कन से (ससन–श्वैसन–श्वासोच्छवास; ससन–वसंतमंजरी; ससन–पवन; ससन–ससककर–खिसककर) – इनमें से किसी एक, या सभी के समेकित स्पर्श (परसें) से नायिका (धनि) का आँचल (अंबछ) खिसक गया, इस कारण उनकी देह की आभा देख पाया। प्रतीत हुआ जैसे घनघोर बादलों (नव जलधर) के भीतर से बिजली (बिजुरी-रेह–बिजली की रेखा) चमक उठी हो। नायिका को जाते हुए देखकर आज मेरे मन में तरह-तरह के भाव (मोहि उपजल रंग) उमड़ आए। उनको देखकर प्रतीत हुआ जैसे धरती से सहारा लिए बिना (महि निरअवलंब) कोई स्वर्णलता (कनकलता) भ्रमण कर रही हो। एक अपूर्व बात और देखी कि उस स्वर्णलता में एक जोड़ा उरोज-कमल विद्यमान है, जो सामने दीख रहे मुखचंद्र के कारण खिल नहीं रहा है। कमल तो सूर्य के समक्ष खिलता है, चंद्रोदय होते ही खिला हुआ कमल बंद हो जाता है। इस पद को गाते हुए कवि विद्यापति कहते हैं कि इस पूरे दृश्य का रस-मर्म कोई रसवंत ही समझ सकता है। हाँसिनी देवी के स्वामी राजा देवसिंह अगम पारखी रसिक हैं।

इस पद में उत्प्रेक्षा अलंकार का मनोरम परिपाक मिलता है। उपमेय को ही उपमान मान लेने पर, अर्थात अप्रस्तुत को प्रस्तुत मानकर वर्णन हो तो उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इस अलंकार में उपमेय-उपमान में अभिन्नता दिखाई जाती है। यहाँ नायिका के अतिशय गौर वर्ण देह के

लिए बिजुरी-रेह की चमक प्रस्तुत कर उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे काव्य सौंदर्य उपस्थित हुआ है। अगली पंक्तियों में भी उत्प्रेक्षा की स्पष्ट छवि दिखाई देती है। नायिका के गौरवर्ण के कारण उन्हें स्वर्णलता और 'महि निरअवलंब' कहा गया है, यहाँ यह उल्लेख करना प्रसंगानुकूल होगा कि अमरबेलि का रंग स्वर्ण जैसा होता है, और उसका धरती से कोई संपर्क नहीं होता। इसी तरह फिर उनके मुख को चंद्रमा और नुकीले उन्नत उरोजों को बिना खिला हुआ कमल कहा गया है। अलंकार नियोजन में सतर्क, सटीक, सुनियोजित प्रतिमानों के उपयोग हेतु महाकवि विद्यापति के जादुई काव्य कौशल की प्रशंसा जितनी भी हो, कम होगी।

- **लोटइ धरनि, उठाए धरि सोई। /खने खन साँस खने खन रोई।। ...**

व्याख्या

इस पद में विद्यापति ने नायिका की दारुण विरह-दशा का वर्णन किया है। कृष्ण के वियोग में वे इतनी व्याकुल हैं कि धरती पर लोट-लोटकर अपना दुख व्यक्त कर रही हैं। धरती पर सोकर विरहाग्नि को शांत करना चाहती हैं। क्षण-क्षण रोती हैं, फिर तनिक साँस लेकर रोने लगती हैं। पल-पल मूर्छित होती हैं; कंठ अवरुद्ध हो जाता है; क्या होना बदा है, पता नहीं चलता। हे कृष्ण! नायिका की ऐसी दशा देखी नहीं जाती। आपके हाथों के स्पर्श के बिना इनका जीना संभव नहीं लगता। कोई भाग्य की दुहाई दे रहा है, कोई वेद-मंत्र जप रहा है, कोई नवग्रह पूज रहा है, कोई हाथ पकड़कर धातु-विचार कर रहा है। हे कृष्ण! नायिका के जीवन में आए विषम विरह का अनुमान कोई नहीं कर रहा है।

- **माधब, तोहें जनु जाह बिदेस। ...**

व्याख्या

विद्यापति का यह पद नायिका के आसन्न (निकट आए) विरह का वर्णन है। विरह शब्द का कोशीय अर्थ वियोग, अभाव, बिछुड़न है; पर साहित्य में इसे प्रियतम के वियोग में अनुभूत अनुराग के रूप में देखा जाता है। प्रस्तुत पद में प्रियतम-वियोग से होने वाली पीड़ा का वर्णन हुआ है। उन दिनों विदेश का अर्थ, आज जैसा नहीं था, परोक्ष होने का अर्थ विदेश लगा लिया जाता था। इस पद में नायिका, कृष्ण (माधव) से विदेश न जाने का निवेदन कर रही है। कह रही है– हे माधव! आप विदेश न जाएँ! क्योंकि आप विदेश जाएँगे तो अपने साथ मेरा आमोद-प्रमोद भी लिए चले जाएँगे, वापस संदेश क्या लाएँगे। वन मध्य यात्रा करते हुए आपकी मति बदल जाएगी। हे स्वामी! आप मुझे भूल जाएँगे। स्वामी! मैं हीरा, मणि, माणिक्य कुछ भी नहीं माँगूँगी, बस बार-बार आपको ही माँगूँगी। ज्यों ही आप जाने की बात करते हैं, मेरी आँखों में आँसू इस तरह भर आते हैं कि आपकी ओर देखा तक नहीं जाता। एक ही नगर में रहकर यदि प्रियतम पर किसी और का अधिकार हो जाए, तो मेरी अभिलाषा कैसे पूरी होगी। कोई कामिनी अपने प्रियतम के साथ हो तो वह बहुत सौभाग्यशालिनी (सोहागिनि) होती है, जैसे चंद्रमा के निकट तारा। विद्यापति कवि कहते हैं कि हे सुकामिनी! ध्यान से सुनो! अपने हृदय को दृढ़ करो, और धैर्य (सारा) रखो।

- **के पतिआ लए जायत रे/ मोरा पिअतम पास। ...**

व्याख्या

इस पद में नायिका की विरह-दशा का वर्णन है। प्रियतम के पास पत्र भेजने को आतुर नायिका व्याकुल होकर कहती हैं कि सावन का महीना आ गया, पावस के विरह का यह

असहनीय दुख हृदय सह नहीं पाता है; प्रियतम के बिना इस घर में अकेले रहा नहीं जा रहा है। हे सखि! इस दुनिया में दूसरों के दारुण दुख का भी संज्ञान कोई कहाँ लेता है! कृष्ण ने तो मेरा मन-हरण ही कर लिया, मेरा भी मन कहाँ पीछे रहता, उन्हीं के साथ चला गया, गोकुल तज कर कृष्ण के पास मधुपुर जा बसा, कितना अपयश हुआ! हे सखि! मेरे इन दारुण दुखों से भरा पत्र मेरे प्रियतम के पास कौन ले जाएगा? कवि विद्यापति इस वेदना को कम करते हुए प्रबोधन देते हैं कि हे नायिके! हे सखि! अपने प्रिय पर आस रखें। इस कार्तिक महीने में आपके मनभावन अवश्य आएँगे।

- **मोरा रे अँगनमा चनन केरि गछिया। ...**

व्याख्या

इस पद में भी नायिका के चरम भावोल्लास का विलक्षण वर्णन हुआ है। नायिका के आँगन में एक चंदन का पेड़ है। उस पेड़ पर बैठा एक कौआ आवाज दे रहा है (कुररए)। मिथिला में आज भी किसी घर-आँगन में बैठकर कहीं कोई कौआ आवाज लगाए, तो माना जाता है कि कोई अतिथि आने वाले हैं। अब यह मान्यता विद्यापति के इस पद की रचना से पहले से है या इस पद की यह पंक्ति ही कहावत हो गई, यह शोध का विषय है, पर इसमें संदेह नहीं है कि विद्यापति पदावली की असंख्य पंक्तियाँ उनके जीते-जी मिथिला में कहावत बन गई थीं। आज भी मिथिला क्षेत्र में किसी के आँगन में कौआ बोले तो घर की महिलाएँ अतिथि-आगमन की सूचना देने वाला दूत समझकर उसे रोटी का टुकड़ा देकर प्रसन्न करती हैं और आँगन में पानी का छिड़काव कर भूमि और वातावरण को शीतल करती हैं। इस पद की नायिका उस कौवे की आवाज सुनकर मुदित हो जाती है। अपने प्रवासी प्रियतम के

आगमन की कल्पना से पुलकित हो उठती है, और कौवे को वचन देती है– हे वायस (कौआ)! तुम्हारी इस आवाज से मैं प्रसन्न हूँ। यदि आज मेरे प्रियतम आ गए, तो वचन देती हूँ कि मैं तुम्हारी चोंच में सोने का आवरण मढ़ा दूँगी। प्रसन्नचित नायिका अपनी सखियों से कहती है– हे सखियों! तुम सब इस उल्लासमय क्षण में झूमर, लोरी (लोकरंजक गीतों की विशिष्ट शैलियाँ) गाओ। मैं मदन-आराधना में जाती हूँ। फिर वह विकल भी हो उठती है– चारों ओर खिले चंपा, मौलश्री की सुषमा और चाँद के शीतल प्रकाश से नहाई हुई रात उसे आह्लादित करने लगती है। व्याकुलता में चिंतित भी हो उठती है– ऐसे में मैं मदन-अराधना भी किस प्रकार करूँ? अत्यधिक रति-पीड़ा जो होगी! विद्यापति कवि गाते हैं– हे नायिके! तुम्हारे प्रीतम गुणों के सागर हैं। राजा भोगीश्वर सारे गुणों के आगार हैं, उनकी रमणी रानी पदुमा देवी हैं।

2.9 सारांश

महाकवि विद्यापति की रचनात्मकता राज्याश्रय में रहने के बावजूद चारण-काव्य की ओर कभी उन्मुख नहीं हुई। उनका राष्ट्र-बोध, संस्कृति-बोध, इतिहास-बोध और समाज-बोध सदा उनको संचालित करता रहा। उनके सामाजिक सरोकार, रचनात्मक दायित्व, नैतिकता एवं निष्ठा के प्रमाण 'पदावली' के अलावा संस्कृत और अवहट्ठ में भी रचित उनकी कृतियों में स्पष्ट दीखते हैं। पर उन्हें जन-जन तक पहुँचाने का श्रेय उनकी कोमलकांत 'पदावली' को जाता है। राजमहल से झोपड़ी तक, देवमंदिर से रंगशाला तक, प्रणय-कक्ष से चौपाल तक उनके पद समान रूप से आज भी समादृत हैं। वयःसंधि, पूर्णयौवना, विरहाकुल, कामातुरा, कामदग्धा आदि सभी कोटि की नायिकाओं के नख-शिख वर्णन; मान, विरह, मिलन, भावोल्लास वर्णन;

शिव, कृष्ण, दुर्गा, गंगा के स्तुति-पद में कवि ने सामाजिक जीवन के व्यावहारिक स्वरूप को उजागर किया है। उनके पद आज भी आम जनजीवन के सर्वविध सहचर बने हुए हैं; नागरिक जीवन के संस्कारों, लोकाचारों में लोकजीवन के अनुषंग बने हुए हैं। किसी एक रचनाकार के यहाँ स्थान-काल-पात्र, लिंग-जाति-वर्ग-संप्रदाय, शोक-उल्लास, जय-पराजय, नीति-धर्म-दर्शन-इतिहास-शासन, साहित्य-कला-संगीत-संस्कृति, युद्ध-प्रेम-पूजा जैसे तमाम क्षेत्रों का इतना सूक्ष्म अवबोध चकित करता है, पर सत्य यही है! ऐसे पूर्वज साहित्यसेवी के अवदान से गौरवान्वित भारतीय साहित्य धन्य है।

2.10 शब्दावली

वैष्णव – विष्णु के उपासक

शैव – शिव के उपासक

महामहोपाध्याय – एक प्रकार की उपाधि

वयःसंधि – पूर्ण किशोरावस्था के बाद व पूर्ण यौवन से पूर्व की बीच की स्थिति

नायिका-भेद – काव्यशास्त्र के अनुरूप नायिका की विभिन्न कोटियाँ

नख-शिख – नख से लेकर सिर तक शरीर के सभी अंगों के सौंदर्य का वर्णन

तिरोधान – मृत्यु

लौकिक – सांसारिक

दरबार-संपोषित –किसी राज दरबार में आश्रय पाए हुए

2.11 उपयोगी पुस्तकें

- *विश्वकवि विद्यापति* – सीताराम झा 'श्याम'; प्रकाशन विभाग, दिल्ली
- *विद्यापति* – शिवप्रसाद सिंह; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- *विद्यापति अनुशीलनः खंड 1 तथा 2* – वीरेंद्र सारंग (संपादक); बिहार हिंदी ग्रंथ अकादेमी, पटना

2.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) – (iii)

   (ख) – (ii)

   (ग) – (ii)

   (घ) – (i)

   (ङ) – (iv)

2. देखिए– भाग 2.3

3. (क) – ×

   (ख) – ✓

   (ग) – ✓

   (घ) – ✓

   (ङ) – ×

4. देखिए– भाग 2.4

5. देखिए– भाग 2.5

6. देखिए– भाग 2.6

7. देखिए– भाग 2.7

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 कबीर का काव्य

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 कबीर का व्यक्तित्व और रचना संचार

3.3 भक्तिकाल और कबीर

3.4 कबीर की भक्ति

3.5 कबीर की सामाजिक चेतना

3.6 कबीर की भाषा और काव्य सौंदर्य

3.7 कबीर के काव्य का वाचन और आस्वादन

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 उपयोगी पुस्तकें

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

'कबीर का काव्य' आपके पाठ्यक्रम की तीसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- कबीर के जीवन और उनकी रचनाओं से अवगत हो पाएँगें ;

- भक्तिकाव्य के संदर्भ में कबीर की विशिष्टताओं को रेखांकित कर पाएँगें ;
- कबीर की सामाजिक चेतना की जानकारी दे पाएँगे; तथा
- उनकी भाषागत विशिष्टिताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

कबीर हिंदी भक्तिकाव्य के प्रारंभिक कवियों में है। उन्होंने ईश्वर के निर्गुण रूप को स्वीकार करते हुए अपनी भक्ति का विकास किया। कबीर जिस समय में हुए उस दौर में समाज की तथाकथित निम्न जातियों को साधना का अधिकार नहीं था। कबीर ने ऐसी किसी बंदिश को मानने से इंकार कर दिया और साथ ही कर्मकांड को महत्व देने वाली उपासना पद्धति से अपनी असहमति जताई। उन्होंने योग तथा प्रेम को महत्व दिया। ऐसा माना जाता है कि उन्हें किसी प्रकार की औपचारिक शिक्षा नहीं मिल पाई थी। इस कमी की पूर्ति उन्होंने सत्संग एवं यात्राओं के माध्यम से की। इसने उनकी अभिव्यक्ति को प्रभावित किया और उनकी भाषा में विभिन्न क्षेत्रीय प्रभाव आए। कबीर की साधना बहुत कुछ अंतर्मुखी है इस कारण उनमें रहस्यत्माकता की भी प्रवृत्ति है। आगे इन सबके बारे में आपको विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

3.2 कबीर का व्यक्तित्व और रचना संसार

मध्ययुगीन हिंदी भक्ति साहित्य में कबीर सबसे पहले आते हैं। रचनाकाल की दृष्टि से भी और पूरे समाज को प्रभावित करने की दृष्टि से भी। कबीर के व्यक्तित्व को समझने के लिए उस युग की उथल-पुथल को समझना आवश्यक है। कबीर राजनैतिक-सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक संक्रमण की व्यापक और गंभीर सरणियों का परिणाम थे। एक ओर राजनैतिक दृष्टि से इस्लाम का शासन पूरी तरह स्थापित हो चुका था, तो दूसरी ओर समाज ऊँच-नीच

के बंधनों में जकड़ा हुआ था। इस्लाम धर्म के रूप में समता के सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत कर रहा था, तो इस्लाम के आने से स्थापत्य, निर्माण, व्यापार में बढ़ोत्तरी हुई। इस बढ़ोत्तरी ने निम्न समझी जाने वाली जातियों को (जो मुख्य रूप से कामगार जातियाँ थीं) में थोड़ी आर्थिक संपन्नता उत्पन्न की। इन दोनों संदर्भों ने– सैद्धांतिक एकता और अपेक्षाकृत बहुत कम ही सही, आर्थिक उन्नति ने समाज की विभिन्न जातियों और समुदायों के बीच भक्ति को एक अधिकार के रूप में प्रस्तुत किया। यह भी स्वीकृत मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही मनुष्य अधिकारों की बात करता है।

आज की आधुनिक शब्दावली में बात कही जाए, तो भक्ति मध्ययुग का लोकतांत्रिक अधिकार ठहरती है, क्योंकि मध्ययुग में मनुष्य का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति थी। मोक्ष ईश्वर के चरम तादात्म्य से प्राप्त होता था। ईश्वर का चरम तादात्म्य भक्ति द्वारा संभव था। चूँकि समाज में जब से वर्णाश्रम व्यवस्था स्थापित हुई थी, तब से भक्ति पर सवर्णों का अधिकार था। मध्यकाल में नई सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में जब कबीरदास आदि भक्त कवि भक्ति को अधिकार के रूप में देखते हैं, तो यह शताब्दियों की वर्णक्रम व्यवस्था को गंभीर चुनौती थी।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'कबीरदास' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है, "कबीरदास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी। उन दिनों उत्तर के हठयोगियों और दक्षिण के भक्तों में मौलिक अंतर था। एक टूट जाता था पर झुकता न था, दूसरा झुक जाता था पर टूटता न था।" इसी धार्मिक राजनैतिक सामाजिक वातावरण में कबीरदास का उद्‌भव होता है। इस संक्रमणशील समय और उसकी विभिन्न वृत्तियों से ही कबीरदास का व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। इसीलिए कबीर के व्यक्तित्व में मैदानी भाग में बहने वाली नदी की कलकलता नहीं है, अपितु पहाड़ों में बहने वाली नदी का निनाद है। कबीरदास

के व्यक्तित्व में अगर योगियों की अक्खड़ता है तो वैष्णव भक्तों की तल्लीनता भी। अगर उनमें जाति और धर्म की विसंगतियों पर गंभीर व्यंग्य है, तो ईश्वर को पा लेने की चरम उत्कंठा भी है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी इसी पुस्तक में बताया है, "कबीरदास ने यह अक्खड़ता योगियों से विरासत में पाई थी। संसार में भटकते हुए जीवों को देखकर करुणा के अश्रु से वह कातर नहीं हो आते थे, बल्कि और भी कठोर होकर उसे फटकार बताते थे।" वे योगियों से अक्खड़ता पाते हैं तो उन्हें चुनौती भी देते हैं। मेरूदंड पर दुलैचा डालकर समाधि लगाने वाले को वे कच्चा योगी कहते हैं :

मेरुदंड पर डारि दुलैचा जोगी तारी लावैं।

सो सुमेर की खाक उड़ैगी कच्चा योग कमावैं।।

योगियों पर कबीर के इस तरह के प्रहार अनेक स्थलों पर हैं। एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं कि भले हृदय में भगवत् भक्ति न हो तो शरीर की साधना कहाँ तक साथ देगी :

जरि गौ कंथा धज गौ टूटी। भजि गौ डंडे खपर गौ फूटी।

कहहिं कबीर इ कली हैं खोटी जो रहे करवा सौ निक टोटी।।

परंतु इस अक्खड़ता को उनका फकीराना व्यवहार स्थानापन्न करता है। वे किसी भी व्यवहार के साथ ताउम्र नहीं रहे, चाहे वह जितना भी खराब या अच्छा क्यों न हो। इसका मूल कारण यह रहा होगा कि वे सत्संग आदि के माध्यम से अपना निरंतर परिष्कार करते चलते हैं। अपने इसी स्वभाव के कारण वे कह पाते है :

हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।

अब घर जारों तासु का, जो चलै हमारे साथ।

कबीर के व्यक्तित्व को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन शब्दों में रेखांकित किया है, "ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्तमौला; स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़; भक्त के सामने निरीह, वेशधारी के आगे प्रचंड; दिल के साफ, दिमाग के दुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय।"

जीवन-वृत्त

कबीरदास के जीवन-चरित्र के संबंध में अत्यंत सीमित जानकारी प्राप्त होती है। कबीरदास के जीवन के संदर्भ में जिन लोगों ने भी लिखा है, वह सब श्रुतियों पर आधारित है। यहाँ तक कि उनके जन्म और मृत्यु संबंधी हमारी जानकारी भी आधिकारिक या प्रमाण पुष्ट नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने इनका जन्म वर्ष अलग-अलग बताया है। पर इतना निश्चित है कि ये पंद्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में विद्यमान थे। कबीरपंथियों में इनके जन्म को लेकर यह पद प्रचलित है :

चौदह सो पचपन साल गए, चंदवार एक ठाठ ठए।

जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।।

घन गरजे दामिनि दमके बूँदें बरषें झर लाग गए।

लहर तलाब में कमल खिलें तहँ कबीर भानु प्रगट हुए।

यह पद कबीरदास के शिष्य धर्मदास का बताया जाता है। कहा जाता है कि कबीरदास का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी से हुआ। इनकी माता ने इन्हें तालाब के किनारे छोड़ दिया था और एक मुस्लिम दंपत्ति नीरू और नीमा ने इनका लालन-पालन किया। यह परिवार जुलाहा जाति से संबंधित था। कबीर के जुलाहा होने की पुष्टि उनके निम्न पद से भी होती है :

जाति जुलाहा मति को धीर। हरसि हरसि गुन रमै कबीर।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार यह जुलाहा परिवार हाल ही में मुसलमान हुआ था। साथ ही वे यह भी बताते हैं, "कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुसलमान एक बार भी नहीं कहा। वे बराबार अपने को "ना-हिंदू ना-मुसलमान कहते रहे।"

कबीरदास ने कोई परंपरागत शिक्षा ग्रहण की होगी, इसकी गुंजाइश कम ही दिखाई पड़ती है। जनश्रुति में वे निरक्षर ही माने जाते हैं। कबीर ने स्वयं भी कहा है :

मसि कागद छूयो नहिं, कलम गहि नहिं हाथ।

चारिउ जुग की महातम, मुखहिं जनाई बात।।

इसके बावजूद रामानंद को उनका गुरु स्वीकार किया जाता है। उपर्युक्त पद को अभिधा में लेने पर भी इतना तो स्पष्ट है कि कबीर की व्यावहारिक शिक्षा सघन थी। उन्होंने सत्संग किया। सभी के पास कुछ सीखने की ललक से गए – क्या योगी, क्या नाथ, क्या वैष्णव! कहा जाता है कि उन्होंने लंबी-लंबी यात्राएँ कीं। इन यात्राओं के दौरान उनके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि होती रही।

कबीर के साथ प्रायः लोई का नाम लिया जाता है। कुछ लोग लोई को कबीर की पत्नी तथा कुछ अन्य लोग उसे इनकी शिष्या बताते हैं। यह भी बताया जाता है कि लोई से कबीर के कमाल और कमाली नाम के पुत्र-पुत्री हुए। कबीर ने लोई को संबोधित करके कई पद कहे हैं। एक पद में वे कबीर और लोई के एक घर होने की बात कहते हैं :

रे या मैं क्या मेरा तेरा, लाज न मरहिं कहत घर मेरा।

कहत कबीर सुनहु हे लोई, हम तुम विनति रहेगा सोई।

कबीरदास राजनीतिक काल के हिसाब से सिकंदर लोदी के युग में हुए। बताया जाता है कि अपने विचार और व्यवहार के कारण वे राजसत्ता के कोप के भाजन भी हुए। इनकी मृत्यु के संबंध में भी कोई निश्चित राय नहीं है। कुछ विद्वान – श्यामसुंदर दास और रामचंद्र शुक्ल आदि – इनकी मृत्यु 1518 ई. में मानते हैं परंतु पीतांबरदत्त बड़थ्वाल 1448 ई. में ही इनकी मृत्यु बताते हैं।

कबीर की रचनाएँ

आप यह जानकारी प्राप्त कर चुके हैं कि कबीरदास को अक्षर ज्ञान नहीं था। कबीरदास की रचनाओं को उनके शिष्यों ने संगृहीत किया। परंतु कबीरदास के नाम पर प्रचलित ग्रंथों की प्रामाणिकता सदैव संदिग्ध रही है। विश्वनाथ सिंह जूदेव ने तो यहाँ तक कहा है कि कबीर के जीवनकाल में ही उनके बहुत से जाली-ग्रंथ बन गए थे। कबीरदास के कुछ पद 'गुरु ग्रंथ साहिब' में भी मिलते हैं।

कबीर साहित्य की वैज्ञानिक खोज का कार्य 1903 ई. में एच.एच. विल्सन ने शुरू की। उन्हें कबीर के नाम पर कुल आठ ग्रंथ मिले। इसके बाद बिशप जी. एच. वेस्टकॉट ने कबीर लिखित 84 पुस्तकों की सूची प्रकाशित की। रामदास गौड़ लिखित 'हिंदूत्व' नामक ग्रंथ में 71 पुस्तकें, तो मिश्र बंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' में 75 पुस्तकें बताई हैं। इसी प्रकार हरिऔध जी ने 'कबीर वचनावली' में 21, रामकुमार वर्मा ने 'हिंदी का अलोचनात्मक इतिहास' में 61 ग्रंथों और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में 140 ग्रंथों की सूची मिलती है। इन ग्रंथों में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ हैं, इनकी प्रामाणिकता पर गहराई से विचार नहीं किया गया है।

आधुनिक समय में श्यामसुंदर दास ने 'कबीर ग्रंथावली', डा. रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर', अयोध्याप्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'कबीर वचनावाली', डा. पारसनाथ तिवारी ने 'कबीर-ग्रंथावली' आदि नामों से कबीर की रचनाओं का संपादन किया है। हिंदी के अतिरिक्त बंगला में रवींद्रनाथ टैगोर ने भी कबीर के पदों का चयन प्रस्तुत किया है। क्षितिमोहन सेन ने भी 'कबीर के पद' संपादित किए हैं।

कबीरदास की रचनाएँ 'बीजक' नाम से संगृहीत हूई। 'बीजक' का अर्थ है – गुरुधन बताने वाली सूची। कबीर ने कहा है :

बीजक बित्त बतावई, जो बित गुप्ता होय।

सबद बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय।

बीजक संबंधी उपर्युक्त पद का अर्थ है– जो वित्त या गुरु धन होता है, उसका ज्ञान केवल बीजक से लगता है, उसी प्रकार जीव के गुप्त धन को अर्थात उसके वास्तविक स्वरूप को

शब्द रूपी बीजक बताते हैं। कबीर का साहित्य साखी, सबद और रमैनी के रूप में उपलब्ध है। कबीर ने बीजक में सृष्टि, माया, जीव, मोक्ष, आदि से संबंधित, भव-पंथ के कष्टों, सत्यानुभव, सत्संग महिमा, संसार की असारता, सदगुरु महिमा, भक्ति आदि का विशद विवेचन किया है। दर्शन के साथ काव्य का सुंदर सामंजस्य कबीर की रचनाओं की अन्यतम विशेषता है।

बीजक के तीन भाग साखी, सबद, रमैनी हैं। इनके अर्थ को जान लेना आवश्यक है। प्रायः माना जाता है कि रमैनी में जगत व्यवहार, साखी में जीव और सबद में ब्रह्म संबंधी विचार हैं। रमैनी चौपाई छंद में लिखी गई है। इनमें कुछ रमैनियाँ ऐसी भी हैं जिनके अंत में एक-एक साखी है। इस संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है, "साखी उद्धृत करने का अर्थ यह होता है कि कोई दूसरा आदमी मानो इन रमैनियों को लिख रहा है और इस रमैनी-रूप व्याख्या के प्रमाण में कबीर की साखी या गवाही पेश कर रहा है।" रमैनी शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है :

(i) जिसमें संसार के जीवों के रमण का विवेचन है।

(ii) वेद-शास्त्रों के विचारों में रमण करने वाली।

(iii) एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं।

कबीर ने सबद का प्रयोग दो भावों को ध्यान में रखकर किया है :

(i) परमतत्व के अर्थ में

(ii) पद के अर्थ में

साखी शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का तद्भव है। साखी अर्थात साक्ष्य। अर्थात साखी वह काव्य रूप है जिसमें प्रत्यक्ष जागतिक अनुभवों का वर्णन है। द्विवेदी जी ने साखियों को कबीर के सिद्धांतों की जानकारी का सर्वोत्तम साधन माना है।

बोध प्रश्न

1. कबीर के काव्य से संबंधित निम्नलिखित पुस्तकों तथा उनके संकलनकर्ता/ संपादक का सही युग्म तैयार कीजिए।

पुस्तक	संकलनकर्ता/संपादक
(क) कबीर के पद	(i) डॉ. रामकुमार वर्मा
(ख) संत कबीर	(ii) क्षितिमोहन सेन
(ग) कबीर वचनावली	(iii) डॉ. पारसनाथ तिवारी
(घ) कबीर ग्रंथावली	(iv) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

2. साखी, सबद और रमैनी का परिचय दीजिए। (उत्तर छः पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.3 भक्तिकाल और कबीर

भारत में भक्ति की परंपरा बहुत प्रचीन, विशद और गहरी रही है। इस परंपरा में ही हिंदी का भक्ति आंदोलन विद्यमान है। हिंदी भक्ति आंदोलन उत्तरी भारत में चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक फैला है। इस काल में भक्ति समाज की विभिन्न सरणियों में फैल गई; जाति, धर्म, कुल की सीमाएँ लाँघकर। इस रूप में ही उसने एक जन आंदोलन का रूप लिया। इसीलिए रामविलास शर्मा जैसे विद्वान इसे 'लोकजागरण' की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार, ''भारतेंदु युग उत्तर भारत में जनजागरण का पहला दौर नहीं है, वह जनजागरण की पुरानी परंपरा का खास दौर है। जनजागरण की शुरूआत तब होती है जब वहाँ बोलचाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है, जब यहाँ विभिन्न प्रदेशों में आधुनिक जातियों का गठन होता है।" इस सिद्धांत के अनुसार ही आधुनिक काल के जनजागरण को वे 'नवजागरण' और मध्यकालीन जनजागरण को 'लोकजागरण' कहते हैं। आधुनिक काल का जनजागरण साम्राज्यवाद विरोधी था, जबकि मध्यकालीन लोकजागरण सामंतवाद विरोधी।

इस रूप में विचार करें तो मध्ययुग का भक्तिकाल भक्ति की पारंपरिक अवधारणाओं तक खुद को सीमित नहीं रख सकता था। इस संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी का मत यह है कि भक्तिकाल में 'धर्म साधना का नहीं', भावना का विषय बन गया।' आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को धर्म का रसात्मक रूप कहा है। यहाँ यह विचार करना जरूरी है कि मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन का ऐतिहासिक आधार क्या है? आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को इस्लामी आक्रमण से पराजित हिंदू जनता की मनः स्थिति से जोड़ा है। प्रश्न उठता है कि भक्ति

आंदोलन की शुरूआत दक्षिण से क्यों हो रही थी? दक्षिण से इसके शुरू होने की बात को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रेखांकित किया है, "भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर आ रहा था ...।'' या ''भक्ति आंदोलन की जो लहर दक्षिण से आई उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिंदू मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की भी भावना कुछ लोगों में जगाई।"

द्विवेदी जी ने इसे भारतीय चिंतन-धारा का स्वाभाविक विकास बताया। इन विद्वानों ने अपने तरीके से भक्ति आंदोलन को समझा। इनमें सत्य के अंश भी हैं। परंतु दक्षिण में भक्ति का जो उदय हो रहा था, वह जातिगत कठोरता के कारण। वास्तव में भक्ति आंदोलन सामंती व्यवहारों के विरूद्ध भारत का अपना जातीय संदर्भ है। इस तथ्य को समझने के लिए के. दामोदरन की इन पंक्तियों को देखना चाहिए, "ब्राह्मणवाद की मुख्य शिक्षा थी– अर्वैयक्तिक, शाश्वत, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान ब्रह्म में विश्वास करो। किंतु ब्राह्मणवाद केवल दर्शन मात्र नहीं था। दार्शनिक विचारों को प्रतिपादित करने के साथ ही उसने आदिम सर्वात्मवादी विश्वासों और कर्मकांडों को पुनर्जीवित किया, उन्हें सुदृढ़ बनाया और धार्मिक मतवादों में परिवर्तित कर दिया।" ब्राह्मणवाद सामंती व्यवस्था की देन है। इसीलिए भक्ति आंदोलन आत्यंतिक रूप से सामंती व्यवस्था से टकराता है। भक्तिकाल के प्रारंभिक दौर में कबीरदास जैसे उग्र व्यक्तित्व का आना उस ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति जैसा है, जो सामंती-ब्राह्मणवादी मूल्यों और संस्थाओं के विरूद्ध मनुष्य की भावनात्मक स्वायत्तता के लिए अनिवार्य होती है।

कहै कबीर विचारि करि, जिनि कोई खोजै दूरि।

ध्यान धरौ मन सुद्ध करि, राम रह्या भरपूरि।।

कहै कबीर विचारि करि, झूठा लोही चांम।

जा या देह रहित है, सो है मिता रांम।।

वस्तुतः जब कबीरदास निर्गुण भगवान का स्मरण करते हैं, तो वे भगवान के गुणमय शरीर को नहीं स्वीकारते। वास्तव में यह कबीर की मौलिक कल्पना नहीं है। इसके पूर्व भी निर्गुण रूप में ईश्वर की उपासना की जाती थी, उसका स्वरूप बताया गया है। परंतु वहाँ ईश्वर को बताने के लिए निषेधात्मक उपकरणों की सहायता ली जाती है। कबीर की मौलिकता यह है कि वे इस निर्गुण से केवल निषेधात्मक भाव ग्रहण नहीं करते, अपितु उसके स्वरूप को भी निषेधात्मकता की परिधि से बाहर खींच लाते हैं।

वस्तुतः वे ईश्वर को सत, रज और तम गुणों से भी अतीत मानते हैं। कबीर के निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार सगुण देहवादियों की भाँति नहीं किया जा सकता। वास्तव में कबीर ने घट-घट में ईश्वर की सत्ता स्वीकार करके परमात्मा और जीवात्मा में एकत्व स्थापित किया है। उनके अनुसार यह एकत्व माया के कारण खंडित होता है। कबीर कहते है :

जल में कुंभ कुंभ में जल बाहर भीतर पानी।

फूटा कुंभ जल जलहिं समाना यह तत कथो गियानी।

अर्थात माया के समाप्त होते ही परमात्मा-जीवात्मा की एकता स्थापित हो जाती है। कबीर ने निर्गुण ब्रह्म को संबंधों में बाँधकर एक प्रकार से उसे अनुभवातीत होने से बचाया है। कभी पत्नी, कभी मित्र, कभी दास आदि अनेक संबंधों में बाँधकर कबीर ने 'गूँगे के गुड़' को कुछ

कथनीय भी बनाया है। इसी कारण कबीर के राम अव्यावहारिक और असामाजिक नहीं हो पाते।

रहस्य भावना

कबीर की भक्ति के संदर्भ में रहस्य भावना को समझना आवश्यक है। रहस्य का सामान्यार्थ है दुर्बोध तत्व और उस दुर्बोध तत्व से मनन द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है। कालांतर में रहस्यवाद परम सत्ता के प्रति जिज्ञासा का पर्याय हो गई।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, ''चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में रहस्यवाद।'' शुक्ल जी के इस कथन पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। रहस्यवाद में चेतन के साथ विश्वचेतन की अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है। रहस्यवाद में 'अहम' और 'इदम' का क्रमशः लोप होता जाता है। एकत्व भाव ही इसकी प्रथम और अंतिम शर्त है। डा. रामकुमार वर्मा ने भी कहा है कि 'अद्वैत ही मानो रहस्यवाद का प्राण है।' कबीर के ब्रह्म अद्भुत हैं और उनकी गति अगम है :

निरगुन राम जपहूँ रे भाई

अविगत की गति लखि न जाइ।

रहस्यवाद की चार विशेषताएँ मानी गई हैं– आध्यात्मिक प्रेमधारण का अबाध प्रवाह, जागरण का सातत्य, अनंत की ओर भावुकता के साथ हृदय की उन्मुक्तता, तथा अग्रसरण। कबीर की कविताओं में ये चारों विशेषताएँ मिलती हैं। कबीर की रहस्यात्मकता इसलिए भी गहरी

है, क्योंकि कबीर के सरोकार अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों से हैं। वे असीम, अतंत, शून्य रूपी ईश्वर का सान्निध्य पाकर सारी व्यथा भूल जाते हैं :

हरि संगति शीतल भया, मिटा मोह की ताप।

निस बासुरि सुख निध्य लह्या, जब अंतरि प्रकट्या आप।।

कबीर रूप और सीमा की सहायता से उस शाश्वत, अरूप और असीम को देखते हैं, जो उनका चरम प्राप्य है। इसकी सहायता से 'मैं' और 'पर' का भेद समाप्त हो जाता है, द्वैत मिल जाता है। आत्मा परमात्मा के साथ नीरक्षीरवत संबंध स्थापित करती है :

जल में कुंभ कुंभ में जल बाहर भीतर पानी

फूटा कुंभ जल जलहिं समाना यह तत कथो गियानी।

विभिन्न भक्ति पंथों से संबंध

कुछ लोग आक्षेप लगाते हैं कि कबीरदास कभी अद्वैतवाद की ओर झुकते दीखते हैं और कभी एकेश्वरवाद की ओर, कभी वे पौराणिक सगुण भाव से ईश्वर को पुकारते हैं और कभी निर्गुण भाव से। वास्तव में उनका कोई स्थिर तात्विक सिद्धांत नहीं था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसका उचित प्रत्याख्यान किया और कहा कि यह "केवल अश्रद्धा प्रसूत है। ऐसी बातें वही लोग कहते हैं, जो शुरू में ही मान बैठते हैं कि कबीर एक अशिक्षित जुलाहे थे और उल्टी-सीधी अटपटी बानियों से साधारण जनता पर प्रभाव जमाना चाहते थे।'' दूसरी बात यह है कि सत्संग के द्वारा उन्होंने सारा ज्ञान अर्जित किया है। जिस समय, जिस मत के लोगों से उनका सत्संग होता था, उसका कुछ प्रभाव उनकी वाणियों पर पड़ता भी था। परंतु शीघ्र ही

अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और विराट अनुभव से वे उस पंथ की असंगतियों और मनुष्य विरोधी भावनाओं को पकड़ लेते थे। इस तरह वे निरंतर संवाद करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। इस तरह विभिन्न पंथानुयायियों से उनका एक द्वंद्वात्मक संवाद का नाता जीवन भर बना रहा। इस द्वंद्वात्मक संवाद के बीच एक ही सत्य है कि उन्होंने 'त्रिगुणातीत', द्वैताद्वैत विलक्षण, भावाभाव विनिर्मुक्त, अलख, अगोचर' ईश्वर को 'निर्गुण राम' कह कर संबोधित किया।

बोध प्रश्न

3. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक पंक्तियों में दीजिए।

(क) भक्तिकाल को किस विद्वान ने लोकजागरण की संज्ञा दी है?

.....

(ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को धर्म का कैसा रूप माना है?

.....

(ग) कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा के संबंध को कैसा माना है?

.....

(घ) किस विद्वान ने अद्वैत को रहस्यवाद का प्राण माना है।

.....

3.4 कबीर की भक्ति

निर्गुण ईश्वर

कबीर उच्च कोटि के भक्त थे। 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति ही भक्ति है। कबीरदास की परम अनुरक्ति में शायद ही किसी को संदेह हो। परंतु उनकी आसक्ति ईश्वर के किसी सगुण साकार रूप पर न थी। वे ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप के उपासक थे। निर्गुण अर्थात गुण रहित। यहाँ गुण भी प्रसंगतः विशिष्टार्थ को ध्वनित करता है। गुण अर्थात शरीर का वाचक धर्म। तब कबीर का ईश्वर शरीर के वाचक धर्मों से परे है। कबीरदास कहते हैं कि उनका हरि सबसे परे है। वह अगुण और सगुण दोनों से परे है, अजर-अमर दोनों से अतीत है :

संतौ, धोखा कासूं कहिये।
गुन मैं निरगुन, निरगुन में गुन, बाट छाड़ि क्यूँ कहिये।
अजर-अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।
नीति-स्वरूप-बरण नहिं जाके घटि-घटि रह्यौ समाई।
प्यंड-ब्रह्मंड कथै सब कोई वाके आदि अरु अंत न होई।
प्यंड ब्रह्मंड छांड़ि जे कहियै कहै कबीर हरि सोई।।

इतना ही नहीं, वह भाव और अभाव से भी परे है। अर्थात भाव और अभाव दोनों द्वारा उसे परिभाषित नहीं किया जा सकता, वह दोनों से परे हैं :

कह्यां न उपजैं उपजां नहीं जाणै भाव अभाव बिहूनां।

उदै अस्त जहाँ मति बुधि नहीं सहजि राम ल्यौ लीनां।।

राम का स्वरूप

कबीर ने राम की उपासना की है। प्रश्न है कि कबीर के राम हैं कौन? कबीर को राम नाम का मंत्र गुरु रामानंद से प्राप्त हुआ था। परंतु उनके राम रामानंदी सगुण राम नहीं हैं। वह निर्गुण है। कबीरदास के इस निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप के पीछे युग की ऐतिहासिक सीमाएँ ही जिम्मेवार थीं। कबीर के समय में जातिवाद, धर्मवाद, संप्रदायवाद, मठवाद आदि समस्याएँ थीं। इन सब कुरीतियों का खामियाजा समाज के तथाकथित निम्न वर्ण को ही उठाना पड़ता था। इन तथाकथित निम्न वर्ण के लोगों को साधना, पूजा-अर्चना का अधिकार नहीं होता था। और जब ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है तो सदैव देवालयों की आकांक्षा क्यों हो? इस अंतर्विरोध के कारण ही कबीर आदि अनेक तथाकथित निम्न वर्ण के कवियों ने अपने लिए निर्गुण उपासना का मार्ग चुना और उन प्रचलित धार्मिक मतों का खंडन किया, जिसने आदमी-आदमी में भेद बना रखा था। इससे निम्न वर्ण के लोगों को न केवल भक्ति का अधिकार प्राप्त हुआ, अपितु उनमें आत्म सम्मान का भाव भी जागा। इसे कबीर के प्रति बहुत सहानुभूति नहीं रखने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी स्वीकारते हैं। कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है, "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।" अर्थात कबीर के राम पुराण प्रतिपादित राम नहीं थे। कबीर के राम ने न दशरथ के घर जन्म लिया और न ही रावण को मारा। कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि राम को दूर खोजने की जरूरत नहीं है। वह सारे शरीर में रम रहा है।

बोध प्रश्न

4. कबीर के राम के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

5. 'निर्गुण' के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कबीर की निर्गुण भक्ति पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

3.5 कबीर की सामाजिक चेतना

कबीर सामाजिक धार्मिक दुरावस्था के काल में हुए थे। कबीरकालीन भारतीय समाज कई विरोधी विचार सरणियों, आग्रहों तथा उनके विरूद्ध संघर्षरत कई प्रकार की नई शक्तियों के कारण व्यापक उथल-पुथल का था। सामंतवाद अपने सभी आयामों संग (ब्राह्मणवाद, वर्णवाद,

जातिवाद आदि) मौजूद था, तो इसके विरूद्ध संघर्ष चेतना लेकर चले बौद्ध, जैन, शाक्त, सिद्ध और नाथ आदि भी थे। फिर इन धार्मिक सरणियों का स्खलित और भ्रष्ट रूप भी था। एक ओर उग्र इस्लाम तो दूसरी ओर सूफी तथा कबीर थे, जो समाज में अनेक स्तरों पर हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रयास कर रहे थे। इनके बीच सामान्य मनुष्य भी थे, जो धर्म के गैर मानवतावादी सरोकारों से भी जुड़े थे। जनता के धार्मिक जीवन में ईश्वर का अनुराग कम था, बाह्याडंबर ज्यादा थे। हर मनुष्य का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति थी। इसीलिए तत्कालीन समाज में सामाजिक सरोकार लुप्त थे।

कबीर मूलतः भक्त थे और भक्तिमार्ग यथार्थ रूप में मानवतावादी दृष्टिकोण से ही परिचालित होता है। संस्कृति की चाहे जितनी जटिल व्याख्या की जाए, परंतु परदुखकातरता मनुष्य का प्रधान गुण स्वीकार किया जाता रहा है। कबीर कहते हैं :

कबीरा सोई पीर है जो जाने परपीर।

जो पीर न जानइ, सो काफिर बेपीर।।

इस परदुखकातरता के कारण ही कबीर अपने अनुभूत सत्य को शास्त्र सम्मत सत्यों से अलगाते हैं :

तेरा मेरा मनुवा कैसे एक होय रे।

मैं कहता हूँ आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।।

सत्य प्राप्ति की लालसा में कबीरदास ने पूर्ववर्ती समाज में बनी मनुष्य की पहचान की कसौटियों पर तीखा प्रहार किया है। तत्कालीन समाज में मनुष्य की पहचान के दो आधार

थे– एक धर्म और दूसरा जाति और वर्ण। इन पहचानों को कबीर खारिज करते हैं और कहते हैं :

हिंदू कहौ तो मैं नाहीं, मुसलमान भी नाहिं।

पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं।।

वे यह भी कहते हैं, 'हम वासी उस देस के जहाँ जाति बरन कुल नाहिं।'

आलोचनात्मक चेतना और प्रश्नाकुलता कबीर की कविता की दो ऐसी बुनियादी विशेषताएँ हैं, जो सामाजिक धार्मिक रूढ़ियों के प्रति और भी बलवती हो उठती हैं। ये विशेषताएँ ही कबीर को आज भी समाज में प्रासंगिक बनाए हुए हैं। इन दोनों विशेषताओं से समृद्ध उनकी दृष्टि समाज की प्रत्येक रूढ़ि, आडंबर को एक-एक कर तोड़ने की कोशिश करती है। वे हिंदुओं और मुसलमानों की तंगदिली पर प्रहार करते हैं। उनके बीच प्रचलित बाह्याडंबरों का प्रतिकार करते हैं। नमाज और मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं। समाज में प्रचलित अस्पृश्यता और छुआछूत का विरोध करते हैं :

जो तू बांभन बांभनी जाया, तौ आन बाट ह्वै क्यों नहिं आया।

जो तू तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतर खतना क्यों न कराया।।

कबीर वक्तव्य नहीं देते और न उपदेशक बनकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। उनके पास तर्क की भाषा है, जिसे वे संवेदना से संयोजित कर काव्यरूप देते हैं। इसी कारण उपर्युक्त कथनों जैसे तमाम कथन अक्खड़ होकर भी भौंडे नहीं हो जाते।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर के प्रति असहानुभूति प्रकट की है। परंतु इनके महत्व को स्वीकारा भी है, "मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे-से-ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।" कबीर का यह कार्य अद्वितीय है। कबीर ने जातिभेद और संप्रदायवाद को जड़ से समाप्त करने के लिए ही एक ईश्वर की अवधारणा पर बल दिया। परंतु कबीर के समय अनेक संप्रदाय और ईश्वरोपासना विधियाँ प्रचलित थीं। कबीरदास ने वेदपाठ, तीर्थस्थान, छुआछूत, अवतारोपासना आदि तमाम आडंबरों का विरोध किया।

समय से विक्षुब्ध कोई भी सार्थक कवि केवल खंडनात्मक या निषेधात्मक होकर लंबी यात्रा नहीं कर सकता। कबीर ने समय का इतना लंबा अंतराल तय किया है, क्योंकि इन निषेधों के बावजूद उनके पास एक वैकल्पिक संसार का स्वप्न मौजूद था। कबीर ने माया के माध्यम से सामंती देहवाद, इंद्रियासक्ति, अहंकार आदि का विरोध किया।

कबीर का विद्रोह मध्ययुगीन समाज के प्रति विक्षोभ-आक्रोश की उपज है। परंतु उनका एक अधिक गहरा संसार भी है, जहाँ वे दार्शनिक जैसी बातें करते हैं। कबीरदास का धर्म भक्ति और मार्ग प्रेम था। कबीर का दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य को अगर सुख प्राप्त हो सकता है तो केवल ईश्वर की भक्ति में और दूसरों के साथ रहकर सुख प्राप्त हो सकता है तो प्रेम के राज्य में। उन्होंने मतवादों, आडंबरों को त्यागकर अपने लिए यह मार्ग स्वीकार किया है :

निरवैरी निहकामता, सांई सेती नेह।

विषिया सूँ न्यारा रहै, संतन का अंग एह।।

कबीरदास ने खंडनात्मक शैली में जो कुछ कहा, उसमें मानवता की पुकार है, किसी धर्म से द्वेष या वैमनस्य नहीं। कुछ आलोचकों ने उनकी प्रखरता को उनका दोष माना है। उन्हें सिर्फ समाज सुधारक बताया है। यह उनकी भावना के साथ पूरी तरह मेल नहीं खाता। कबीर मूलतः भक्त थे। परंतु कबीर तथा अन्य भक्तों की भक्ति पद्धति में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि अन्य भक्त कवियों ने जहाँ केवल भक्ति मार्ग का वर्णन किया, वहीं कबीरदास ने इसके अतिरिक्त इस मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों अर्थात कुरीतियों, आडंबरों (जिसके कारण भक्त ईश्वर कृपा से वंचित रह जाता है) का भी वर्णन किया। यहीं भक्त कबीर मानवतावादी कबीर बन जाते हैं।

बोध प्रश्न

6. कबीर की सामाजिक चेतना के प्रमुख पक्षों का उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 कबीर की भाषा और काव्य सौंदर्य

कविता के द्वारा कविता से परे की वह विशिष्ट संवेदनशीलता जो संप्रेषित होती है, उसकी एक महत्वपूर्ण कुंजी है– कवियों की भाषा। फिर कबीर की भाषा की बात ही क्या! आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया..... बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानों ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवा-फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके। और अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।"

कबीर की भाषा जनता के बीच से निकली थी, जिसमें व्याकरण और शास्त्र का आग्रह नहीं था। भाषा की सार्थकता की बात वहाँ उठती है, जहाँ भाव कमजोर हों। जहाँ भाव एवं विचार श्रेष्ठ हों, वहाँ भाषा सिर्फ संप्रेषणीयता का मसला रह जाती है। कबीर ने भाषा जनता के बीच से उठाई और उसमें रहस्यात्मक प्रतीक इस प्रकार मढ़ दिए जैसे सुनार सोने में कील। उनकी भाषा में अभिव्यंजना का हर उतार-चढ़ाव मौजूद है। यहाँ तक कि उनके रहस्यवाद की तमाम उलझनें जिस स्तर पर सुलझती हैं, वह स्तर भाषा का ही है। जनता के बीच प्रचलित प्रतीक, रूपक और उपमानों को जगह देकर कबीर अपने पदों को जीवंत कर देते

हैं। यही वजह है कि जनता उनके प्रतीकों की दुर्बोधता के बीच भी बोध-भूमि तलाश लेती है:

आगि जू लागि नीर माहि, कांदो जरिया झारि।

उत्तर-दक्षिण के पंडिता मुए विचारी विचारी।।

विरह की आग जब मानस रूपी नीर में लगती है, तब उसमें निहित विषय-वासनाएँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं और उत्तर-दक्षिण के पंडित विचार करने पर भी इसका रहस्य नहीं समझ पाते। यहाँ कबीर ने आग, जल, कीचड़ आदि प्रतीकों के माध्यम से जिस कथन को संप्रेषित किया है, वह किसी साधारण जन के लिए भी दुर्बोध नहीं है। कबीर इस उलटबाँसी में असंगति अलंकार (पानी में आग लगना) की सहायता से विरहाग्नि के धधकने और उसमें वासनाओं के कीचड़ के जलने की गंभीर चर्चा करते हैं, परंतु जैसे ही मौका मिलता है, उत्तर-दक्षिण के पंडितों के बहाने धर्मशास्त्रज्ञों पर प्रहार भी करते हैं, जिनका ज्ञान केवल पोथियों तक सीमित है। यह कबीर के ही वश की बात थी कि उन्होंने ब्रह्म-मिलन के अनंत खेल को 'बेहदी मैदान में रहा कबीरा' से मूर्तिमान कर दिया।

कबीर रमता योगी थे। भाषा के टाट को उन्होंने जब चाहा ओढ़ा, जब चाहा फेंक दिया :

कहना था सो कह दिया, अब कछु कहना नाहिं।

एक रही दूजी भई, बैठा दरिया माहिं।।

कबीर की भाषा की अक्खड़ता ही उसका प्राण है। जब वे व्यंग्य पर उतर आते हैं, तब पंडित और मुल्ला, अवधूत और योगी सभी उनके बाणों से बिंध कर रह जाते हैं।

कबीर की कविताओं में साधारण जीवन का रस भरा हुआ है। यह श्रोता को सहज आकृष्ट करता है। उन्होंने अपने गुह्य कथनों के लिए रूपकों का सहारा लिया, उपमाएँ परिचित शब्दावलियों के बीच से लीं, पर उसमें गहन अर्थ की परतें हैं। संबंधों की दीवार भी उनकी माया के लिए रूकावट नहीं हैं :

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।

गले राम की जेवड़ी, जित खैंचै तित जाऊँ।

यहाँ नाम के रूप में 'मुतिया' का प्रयोग अत्यंत सार्थक है। इसमें कुत्ते की सारी निरीहता हाथ बाँधे खड़ी हो जाती है। 'मुतिया' के रूप में वही कबीर हैं जो गगन गुफा का कोना-कोना झाँकते हैं, बड़े-बड़े अवधूतों को ललकारते हैं। यहाँ उनकी निरीहता, विश्वास परायण मनुष्य की निरीहता है। निष्ठावान व्यक्ति की विनम्रता है। कबीर की भाषा में लापरवाही, सजगता और आक्रमण तीनों गुण दिखाई देते हैं। आक्रमण की भाषा तो सिद्धों और योगियों की भी थी, पर उसमें वह आत्मविश्वास नहीं था, जो कबीर के पास था। कबीर दंभी नहीं थे, पर यदि उनमें दंभ जैसा कुछ दीखता है, तो वह दरअसल उनका अखंड आत्मविश्वास है :

कबीर माया पापिनीं फंद ले बैठी हाटि।

सब जग तो बन्दे परा, गया कबीरा काटि।।

उपर्युक्त विश्लेषण कबीर की भाषा संबंधी प्रवृत्ति और प्रकृति को स्पष्ट करता है। परंतु उनकी भाषा के संबंध में कुछ सूचनात्मक जानकारियाँ भी आवश्यक है। डा. श्यामसुंदर दास का मत है कि ''कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह खिचड़ी है।'' आचार्य

रामचंद्र शुक्ल का विचार था साखियों की 'भाषा सधुक्कड़ी अर्थात राजस्थानी-पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत ऊपर बताया जा चुका है। निस्संदेह कबीर की भाषा मिश्रित भाषा थी। इसका कारण भी यही है कि इन्होंने लंबी यात्राएँ कीं। व्यापक सत्संग किया। साथ ही पूरब की बोली-बानी तो इनका व्यवहारगत संस्कार थी। अन्यथा इन्होंने किसी औपचारिक शिक्षा के माध्यम से अपनी भाषा का निर्माण तो नहीं किया है। इसी कारण इनकी रचनाओं में खड़ी बोली, पंजाबी और राजस्थानी का प्रचुर प्रभाव है। उदाहरण :

खड़ी बोली : तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ

बारी फेरी बलि गई, जित देखो तित तूँ।।

पंजाबी : अंखड़ियाँ झाँई पड़ी पंथ निहारि-निहारि

राजस्थानी : ना जाने कब मारसी

इस संदर्भ का विश्वनाथ त्रिपाठी ने उचित ही समाहार किया है, "कबीर की भाषा पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिन दिनों कबीर रचना कर रहे थे उन दिनों आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का काव्य-भाषा के रूप में विभाजन आज जैसा स्पष्ट नहीं था। कबीर मूलतः संत थे। उनकी रचनाओं का उद्‌देश्य अपने विचारों और अपनी अंतर साधनात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना था।" इसीलिए प्रचलित भाषा

में कबीर ने रचना की। सम्प्रेषणीयता उनकी भाषा की अनिवार्य और संभवतः एक मात्र शर्त है।

उलटबाँसी

कबीर के काव्य रूपों पर विचार करते समय कबीर की उलटबाँसियों पर विचार करना भी आवश्यक है। अभिव्यक्ति की निरंतरता से शैली का जन्म होता है किंतु इसके उलट अर्थ को व्यवहृति न मिलने से शब्द प्रतीक बनते हैं। भाषा के इतिहास में प्रतीकों का अपना विशिष्ट स्थान है, परंतु यह बतलाना दुरूह कार्य है कि किस शब्द में प्रतीक शक्ति है। कोई भी शब्द प्रतीक बन सकता है। इसकी योग्यता प्रयोक्ता के हाथ होती है। 'उलटबाँसी' भारतीय चिंतन परंपरा का शब्द है। यह गूढ़ और रहस्यमयी बातों को चमत्कारिक ढंग से व्यक्त करने की शैली है। इस शैली का प्रयोग बौद्धों, नाथपंथियों में भी मिलता है। संभवतः उपनिषद्ों की कुछ उक्तियाँ भी इस श्रेणी में आती हैं।

कबीर की उलटबाँसियाँ उनकी प्रतीक योजना का अभिन्न अंग हैं। एक पद देखिए :

एक अचंभौ देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाइ।।

पहिलै पूत पिछै भई माई, चेला कै गुर लागै पाई।

जल की मछरी तरवरि ब्याई, कुता कौ लै गई बिलाई।

बैलहि डारि गोंनि घरि आई, घोरै चढ़ि भैंस चरावन जाइ।

तलि करि साखा उपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल।

कहै कबीर या पद कौं बुझै, ताकौं तीनिऊँ त्रिभुवन सूझै।

अगर इसके सामान्य अर्थ पर विचार करेंगे तो हमारे हाथ शायद ही कुछ लगे। हमें इसका प्रतीकार्थ समझना होगा। सामान्य जीव इंद्रियों के वश में रहता है, पर सिद्धि प्राप्त होने पर इंद्रियाँ उसके वश में आ जाती हैं। पहले साधक होता है, फिर साधना होती है और शिष्य या साधक जब पूर्ण रूप से अंतर्मुखी हो जाता है, विषयों से विरक्त हो जाता है, तब अंतरात्मा इसे अपनी ओर आकृष्ट करता है। पहले साधक अंतरात्मा के साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील था, किंतु सिद्धि के निकट पहुँचने पर स्वयं अंतरात्मा उसकी ओर उन्मुख होता है। यही गुरु का शिष्य के पैर लगना है। वास्तव में यह सिद्धि की चरमावस्था को अभिव्यंजित करने के लिए रचा गया प्रतीक विधान है।

कबीर की अधिकांश उलटबाँसियाँ आध्यात्मिक-दार्शनिक उक्तियाँ हैं। इस शैली के कारण उनकी शुष्क और नीरस दार्शनिक उक्तियों में एक किस्म का चमत्कार उत्पन्न हो जाता है।

बोध प्रश्न

7. उलटबाँसी क्या है? कबीर के काव्य से एक उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.7 कबीर के काव्य का वाचन और आस्वादन

काव्य का वाचन

देखिए– परिशिष्ट

काव्य का आस्वादन

- *झीनी झीनी बीनी चदरिया ।। ...*

संदर्भ

कबीरदास मध्यकालीन निर्गुण भक्ति साहित्य के प्रमुख कवि हैं। यह पद जीवन की संभाव्यता, उसकी निर्मिति, ईश्वर और माया से उसके संबंध को प्रस्तावित करता है। इसमें इन तमाम संदर्भों को कबीर ने वस्त्र-निर्माण की प्रविधि के व्याज से बताया है तथा एक व्यापक रूपक का निर्माण किया है।

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि जिस चादर का निर्माण किया है, वह चादर 'झीनी झीनी' है। झीना होना चादर की जीर्णता, पुरानेपन का भी अर्थी है और उत्कृष्टता-श्रेष्ठता का भी। परंतु आखिरी पंक्ति में कबीरदास ने जिस आत्मविश्वास का परिचय दिया है, वह उत्कृष्टता-श्रेष्ठता का वाचक ज्यादा प्रतीत होता है। पुराने का संदर्भ उम्र की प्रौढ़ता से हो सकता। आगे कबीरदास पूछते हैं कि यह चादर किस ताने-बाने से निर्मित हुई है? किस तार या सूत से निर्मित हुई है? कबीरदास कहते हैं कि इंगला-पिंगला ताना बाना है और सुषमना तार से शरीर रूपी चादर का निर्माण हुआ है। अष्टचक्र दल चरखा है जिससे सूत का निर्माण होता है। पाँच तत्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) और तीन गुणों (सत्, रज, तम) से इस शरीर का निर्माण हुआ है। ईश्वर को शरीर रूपी कपड़े को सिलने में दस महीने लगते हैं। जैसे कुम्हार ठोक-ठोक कर घड़े का निर्माण करता है, वैसे ही ईश्वर ठोक-ठोक कर इस चादर का निर्माण करता है। ईश्वर द्वारा निर्मित शरीर रूपी इस चादर को सभी देवता, मनुष्य, ऋषि-मुनि ओढ़ते हैं, पहनते हैं। दार्शनिक धरातल पर जीव चूँकि ईश्वर का अंश है। अतः जीवात्मा भी परमात्मा की तरह ही पवित्र और निर्मल है। परंतु जीव जीवन क्रम में विभिन्न विषय-वासना, माया के अधीन जीवन जीता है। इस कारण वे इस ईश्वर प्रदत्त और ईश्वर अंश जीवात्मा को मैला कर देते हैं। वासनायुक्त कर देते हैं। कबीरदास कहते हैं कि ईश्वर के दास कबीर ने इस शरीर और आत्मा को बहुत संयम और साधना से ओढ़ा है। इस साधना और संयम के कारण ही ईश्वर ने इस शरीर को जैसा पवित्र और निर्मल बनाया था, उसे वैसा ही रखा है।

विशेष

(i) इस पद में कबीर ने अपने दैनंदिन जीवन के अनुभव, उसकी शब्दावली से रूपक का निर्माण किया है। इसका लक्ष्यार्थ निश्चितरूपेण वह निर्गुण ईश्वर ही है, जो कबीर का आराध्य है, परंतु इस पद में जिस आत्मविश्वास का प्रसार हुआ है, वह भाषा में उनके अनुभव के ढल जाने की क्षमता के कारण ही।

(ii) कबीरदास की आराधना में सारे मत-मतांतरों की शब्दावली, उनकी आचार-व्यवहार नीति दिखाई पड़ती है। इस पद में योग की शब्दावली का व्यवहार हुआ है।

- *कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउ। ...*

संदर्भ

व्याख्येय साखी मध्ययुगीन निर्गुण भक्ति शाखा के सर्वप्रमुख कवि कबीरदास द्वारा रचित है। उनकी यह साखी 'निहकर्मी पवित्रता को अंग' में है। इसमें भक्ति की एकनिष्ठता रेखांकित की गई है।

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि मैं राम का कुत्ता हूँ। कुत्ता कहकर वह दासत्व भाव प्रदर्शित करते हैं। मेरा नाम मुतिया है। मुतिया शब्द बहुत व्यंजक है। इस शब्द की व्यंजना के कारण एक भक्त की सारी निरीहता हाथ जोड़े सम्मुख हो जाती है। इस निरीहता की ही व्यंजना अगली पंक्ति में है। मेरा गले में राम नाम की रस्सी है। वह अर्थात राम, मेरे स्वामी जिधर खींचते हैं मैं उधर हो जाता हूँ। अर्थात मैंने उनके प्रति पूर्ण समर्पण कर दिया है। उनकी जैसी इच्छा होती है, मैं वैसा ही करता हूँ।

विशेष

(i) यह एक 'साखी' है। साखी शब्द 'साक्षी' से बना है अर्थात प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर कबीर ने जो द्विपदी में लिखें, वे साखी कहलाए। यह साखी एक विशेष मनःस्थिति को दर्शाती है। पूर्ण समर्पण की मनःस्थिति को, जो जीवन का मनोवैज्ञानिक सत्य है। अन्यथा कबीर जैसा अक्खड़ ऐसा समर्पण कम ही करता है।

(ii) 'राम' शब्द कबीर की कविता में निर्गुण राम के लिए आता है। सगुण राम के लिए नहीं। कबीर ने अन्यत्र लिखा भी है :

दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।

कबीर के लिए राम का मर्म ही काम का है।

(iii) 'मुतिया' शब्द से भाषा की व्यंजकता में वृद्धि होती है।

- **पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमांन। ...**

व्याख्या

परब्रह्म के तेज का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनुमान तो भौतिक संदर्भ है। परंतु ब्रह्म तो समस्त लौकिकता का अतिक्रमण करता है। उसका सौंदर्य अनिर्वचनीय है। उस अनिर्वचनीय निर्गुण ब्रह्म के बखान में भाषा और तमाम भौतिक साधन, जिनसे उस शोभा को प्रत्यक्ष कराया जा सकता है, अक्षम हैं। इसीलिए उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा

सकता। चूँकि उसका सौंदर्य अनिर्वचनीय है, इसीलिए उसका प्रमाण केवल अपरोक्षानुभूति ही है।

- **ग्यांन प्रकासी गुर मिला, सो जिनि बीजरि जाइ। ...**

व्याख्या

यह साखी 'गुरुदेव को अंग' से लिया गया है।

जब गुरु मिला तब ज्ञान प्रकाशित हो गया। अब यही प्रयत्न है कि जिस गुरु से ज्ञान मिला है, वह किसी भाँति बिसर न जाए। जब गोबिंद ने कृपा की, तब गुरु का साथ मिला।

टिप्पणी

''सो सर्वनाम गुरु और ज्ञान दोनों के लिए हो सकता है। प्रस्तुत साखी 'गुरुदेव को अंग' के अंतर्गत है, जिसमें गुरु की महिमा का विशेष रूप से वर्णन है। इसीलिए 'सो' को गुरु के लिए ही लेना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।''—जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह

- **दुलहिनीं गावहु मंगलचार। ...**

व्याख्या

हे दुलहिन! मंगलाचार गाइए, क्योंकि राजाराम मेरे घर बारात लेकर आए हैं। कबीरदास ने इस पद में एक स्त्री (कुँआरी) के रूप में ईश्वर की आराधना की है। कबीरदास के समग्र साहित्य को देखने से यह बहुत स्पष्ट है कि ईश्वर की उन्होंने अनेक रूपों में आराधना की है। बारात में स्वयं दुलहन तो गाती नहीं। पर इस पद में कबीर रूपी दुलहन गाती है। साथ

ही और अन्य भक्तों का आवाह्न करती भी प्रतीत होती है। ऐसा इसलिए संभव हुआ, क्योंकि भावना के क्षेत्र की नियमावलियाँ सामान्य सांसारिक नियमावलियों से भिन्न होती है। साधक कबीरदास कहते हैं कि मैंने तन-मन दोनों राम में अनुरक्त किया है। बारात में पाँच तत्व (रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द) आए हैं। मेरे पाहुने राम आए हैं और मैं मत्त यौवना उनका स्वागत करती हूँ। मनोवैज्ञानिक समझ में यह उल्लास का अतिरेक है। मनोवैज्ञानिक रूप से, ऐसे में उल्लास और बढ़ जाता है। मैं अपने शरीर रूपी तालाब को बेदी बनाऊँगी और ब्रह्म मंत्रोच्चार करेंगे। मैं अपने स्वामी राम के साथ शादी के फेरे लूँगी– ऐसा करते हुए मैं धन्य महसूस करूँगी। इस बारात को देखने के लिए तैंतीस कोटि देवता और अट्ठासी हजार मुनि उपस्थित हैं। कबीरदास कहते हैं एकमात्र अविनासी पुरुष अर्थात ईश्वर से मैंने विवाह किया है।

यह पद भी रूपक का एक अच्छा उदाहरण है।

- **हरि जननी मैं बालक तोरा। ...**

व्याख्या

इस पद में कबीर ने ईश्वर को अपना अभिभावक तथा स्वयं को उसकी संतान मानते हुए अपनी भक्ति निवेदित की है। वे कहते हैं कि हे प्रभु तुम मेरी माँ और मैं तुम्हारे पुत्र के समान हूँ। मुझमें बुराइयाँ हैं, पर तुम मुझे क्षमा कर दो। पुत्र अनेक अपराध करता है पर माँ उस पर ध्यान नहीं देती। बच्चा माँ के बाल को पकड़कर उसे परेशान करता है, माँ फिर भी उस पर अपना स्नेह कम नहीं करती। कबीर बुद्धिपूर्वक विचार कर कहते हैं कि पुत्र के दुखी होने पर माँ भी दुखी रहती है। अर्थात भक्त पर भगवान का सदा स्नेह बना रहता है।

- **हम न मरैं मरिहै संसारा। ...**

व्याख्या

इस पद में कबीर ईश्वर से साक्षात्कार हो जाने के बाद की अपनी भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि सांसारिकता में फँसे लोगों की मृत्यु होगी, ईश्वर से साक्षात्कार के बाद उन्हें (कबीर को) अमरत्व प्राप्त हो गया है। शाक्त अर्थात शक्ति के उपासक मरेंगे पर राम नाम का रसायन पीने वाले भक्त बचे रहेंगे। प्रभु की मृत्यु होगी तो मेरी भी मृत्यु होगी, प्रभु की मृत्यु नहीं होगी तो मेरी मृत्यु क्यों होगी? इसका अभिप्राय यह है कि भक्त का प्रभु से तादात्म्य हो गया है। अब वह उससे पृथक नहीं है। अब उसकी गति प्रभु के समान है। प्रभु जन्म-मृत्यु से परे हैं। उनकी मृत्यु नहीं होती; अतः प्रभु का साक्षात्कार कर चुका भक्त भी इस बंधन से मुक्त हो गया है। कबीर कहते हैं कि उन्होंने अपना मन प्रभु के मन से मिला दिया है और अमर होकर सुख के सागर को पा लिया है।

- **तब नहिं होते पवन न पांनी। तब नहीं होती सिस्टि उपांनीं। ...**

व्याख्या

कबीर ब्रह्म के अनादि (नित्य) रूप की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जब सृष्टि की उत्पत्ति नहीं हुई थी; हवा और पानी का अस्तित्व नहीं था; जब कोई घर और शरीर नहीं था; पृथ्वी और आकाश भी नहीं था; गर्भ, पौधे की जड़, कली और फूल भी नहीं था; न शब्द बने थे, न स्वाद का अस्तित्व था; विद्या, वेद, गुरु, चेला कुछ भी नहीं था तब भी वह अगम ब्रह्म मौजूद था। कबीर कहते हैं उस अज्ञात (अविनाशी) के बारे में, जो बुद्धि की पहुँच से बाहर

है, जिसका न कोई गाँव है न कोई ठिकाना, जो गुण रहित अर्थात निर्गुण है उसका वर्णन किस नाम से करूँ?

- **संत न छाड़ै संतई, जौ कोटिक मिलहिं असंत। ...**

व्याख्या

'साध साखीभूत कौ अंग' में शामिल इस साखी में कबीर संत के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि संत अगर करोड़ों असंतों (दुष्टात्मा) के बीच हो तो भी अपनी संत-वृत्ति को नहीं छोड़ता जैसे कि चंदन के वृक्ष में साँप लिपटा रहता है, पर वह अपनी शीतलता का त्याग नहीं करता।

- **हिंदू मुआ रांम कहि, मुसलमांन खुदाइ। ...**

व्याख्या

'मधि कौ अंग' में शामिल इस साखी में कबीर कहते हैं कि हिंदू और मुसलमान अपनी-अपनी श्रेष्ठता बताते हुए क्रमशः राम और खुदा कहते-कहते मर गए। कबीर कहते हैं कि वह जीवित है जो दो के भेद में नहीं पड़ता अर्थात जो किसी प्रकार की धार्मिक संकीर्णता से परे है।

3.8 सारांश

- कबीर हिंदी के उन प्रारंभिक कवियों में है जिन्होंने भक्ति को अधिकार के रूप में देखा तथा वर्णाश्रम व्यवस्था को गंभीर चुनौती दी।
- अक्खड़ता उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा थी। संकीर्णता और रूढ़ियों के प्रतिकार के क्रम में उनके व्यक्तित्व का यह पहलू सामने आता है।

- कबीर के जन्म तथा मृत्यु के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। यह माना गया है कि पंद्रहवीं शताब्दी में वे विद्यमान थे।
- कबीर के ग्रंथों की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। उनकी रचनाएँ बीजक नाम से संगृहीत हुईं।
- कबीर के काव्य को तीन भागों – साखी, सबद और रमैनी में बाँटा गया है।
- कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनकी साधना पद्धति निर्गुण का अभिप्राय गुण रहित होना है। उन्होंने अपने ब्रह्म के लिए राम संज्ञा का इस्तेमाल किया है परंतु उसे सगुण अवतारी राम से अलगाया है।
- कबीर की साधना में रहस्य भावना की अभिव्यक्ति हुई है।
- कबीर की साधना पद्धति पर अद्वैतवाद, एकेश्वरवाद आदि विभिन्न पंथों का प्रभाव है।
- कबीर प्रखर सामाजिक चेतना के भक्त कवि थे। उन्होंने वर्णवाद, जातिवाद, धार्मिक संकीर्णता पर निरंतर प्रहार किया। उन्होंने हर तरह की रूढ़ियों को त्यागकर योग और प्रेम के मार्ग की प्रस्तावना की।
- कबीर की भाषा का कोई एक रूप नहीं मिलता। खड़ी बोली, ब्रजभाषा, पंजाबी, राजस्थानी आदि विभिन्न भाषाओं तथा बोलियों का मिला-जुला रूप कबीर की अभिव्यक्तियों में पाया जाता है। उन्होंने अपनी साधनात्मक अनुभूति के लिए उलटबाँसी का भी प्रयोग किया।

3.9 शब्दावली

निनाद – गुंजार

अद्वैतवाद – अद्वैतवाद दर्शन की वह शाखा है जो सिर्फ ब्रह्म की सत्ता में विश्वास करती है। वह जीव और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं करती। जो अंतर दिखाई देता है वह मायाजनित भ्रम है।

समाधि – योग तपस्या आदि का अंतिम चरण जब मन की चंचलता का शमन हो जाता है तथा वह ब्रह्म पर पूर्णतः केंद्रित हो जाता है।

3.10 उपयोगी पुस्तकें

- *कबीरदास* – हजारी प्रसाद द्विवेदी; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *कबीर* – विजयेंद्र स्नातक; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *अकथ कहानी प्रेम की* – पुरूषोत्तम अग्रवाल; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *कबीर साहित्य की परख* – परशुराम चतुर्वेदी; भारती भंडार, इलाहाबाद।

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) – (ii)

   (ख) – (i)

   (ग) – (iv)

   (घ) – (iii)

2. देखिए– भाग 3.2

3. (क) डॉ. रामविलास शर्मा ने भक्तिकाल को लोकजागरण की संज्ञा दी है।

(ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को धर्म का रसात्मक रूप कहा है।

(ग) कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा में एकत्व का संबंध माना है।

(घ) डॉ. रामकुमार वर्मा ने अद्वैत को रहस्यवाद का प्राण माना है।

4. देखिए– भाग 3.4

5. देखिए– भाग 3.4

6. देखिए– भाग 3.5

7. देखिए– भाग 3.6

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 जायसी का काव्य

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 जायसी का व्यक्तित्व और रचना संसार

4.3 जायसी का परिवेश

4.4 जायसी की भक्ति

4.5 जायसी के काव्य में लोक जीवन

4.6 जायसी की भाषा और काव्य सौंदर्य

4.7 जायसी का काव्य के वाचन और आस्वादन

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 उपयोगी पुस्तकें

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

यह इस पाठ्यक्रम की चौथी इकाई है। इस इकाई में प्रेमाश्रयी सूफी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि मलिक मोहम्मद जायसी के काव्य के बारे में जानकारी दी जा रही है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- जायसी के व्यक्तित्व और रचना संसार पर प्रकाश डाल सकेंगे ;
- उनके परिवेश की जानकारी दे पाएँगें ;
- जायसी की भक्ति की विशिष्टताओं से अवगत होंगे ;
- जायसी के काव्य में अभिव्यक्त लोक जीवन के विभिन्न पक्षों के बारे में बता पाएँगे ;
- जायसी के काव्य की भाषागत विशिष्टताओं को रेखांकित कर पाएँगें ; तथा
- पाठ्यक्रम में निर्धारित काव्यांश की व्याख्या कर पाएँगें।

4.1 प्रस्तावना

मलिक मोहम्मद जायसी निर्गुण भक्ति काव्यधारा की प्रेमाश्रयी शाखा जिसे सूफी काव्य के रूप में भी जाना जाता है, के प्रतिनिधि कवि हैं। जायसी के काव्य में सूफी अराधना के तत्व तथा लोक जीवन के विविध पक्ष, दोनों से संबंधित अभिव्यक्तियाँ हैं। 'अखरावत' तथा 'आखिरी कलाम' उनकी साधना परक रचनाएँ हैं, जबकि 'पद्मावत' में साधना और लोक जीवन परस्पर एक-दूसरे से घुले-मिले हुए हैं। जायसी की भक्ति में प्रेम केंद्रीय तत्व है। 'पद्मावत' में पद्मावती ब्रह्म की प्रतीक है जबकि रत्नसेन साधक का। इस काव्य-ग्रंथ में रत्नसेन का प्रमुख लक्ष्य पद्मावती की प्राप्ति है– अर्थात साधक द्वारा ब्रह्म को पाने का उद्योग इस काव्य में वर्णित है लेकिन इस यात्रा में जायसी लोक जीवन के विभिन्न पक्षों को भी उकेरते हैं। 'पद्मावत' एक प्रबंधात्मक कृति है जिसमें अवधी के ठेठ रूप का इस्तेमाल जायसी ने किया है। आगे जायसी के काव्य के इन प्रमुख पक्षों की किंचित विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

4.2 जायसी का व्यक्तित्व और रचना-संसार

अन्य मध्यकालीन रचनाकारों की तरह जायसी के जीवन और व्यक्तित्व के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं है। जो जानकारी उपलब्ध है, वह भी पर्याप्त विवादग्रस्त है। कुछ जानकारी इनकी कविताओं से ही प्राप्त होती है। मलिक मुहम्मद जायसी में 'मलिक' शब्द इनका कुलनाम बताया जाता है तथा जायसी जायस में प्रवास के कारण नाम में आया। मुहम्मद नाम में कुलनाम और प्रवास के कारण आया शब्द जुड़ने से इनका नाम बना– मलिक मुहम्मद जायसी।

जायसी के जन्म की तिथि के संदर्भ में भी मतभेद हैं। अंतःसाक्ष्यों का तर्कपूर्ण विश्लेषण करने से जायसी का जन्म-वर्ष 870 हिजरी (1464 ई.) और मृत्यु 949 हिजरी (1542 ई.) में मान सकते हैं। उनकी पंक्ति है, 'भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी।।' जन्म और मृत्यु के संदर्भ में जो बातें कहीं गई हैं, उनका आधार वह पंक्ति ही है, पर तर्क और व्याख्या सबकी अलग है। 'आखिरी कलाम' में जायसी ने जायस के बारे में लिखा है :

जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नावँ आदि उदयानू।

तहाँ दिवस उस पहुने आएउँ। मा बैराग बहुत सुख पाएऊँ।।

'पद्मावत' में भी उन्होंने लिखा है, 'जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।' अब इस बात पर भी अटकलें लगाई जाती हैं कि जायस जायसी का जन्म-स्थान है या ये जायस में कहीं से आकर बसे थे। ये अटकल इसीलिए हैं, क्योंकि प्रामाणिक साक्ष्यों का अभाव है।

जायसी मलिक शेख ममरेज और मानिकपुर के शेख अलहदार की पुत्री की संतान बताए जाते हैं। यह जन प्रसिद्ध है कि जायसी बचपन में ही माता-पिता को खो चुके थे। साधु फकीरों के साथ समय बिताया और कुछ समय अपने नाना के पास मानिकपुर भी रहे। यह भी बताया जाता है कि मृत्यु के समय जायसी अत्यंत वृद्ध और संतानहीन थे। इनकी संतानहीनता को लेकर भी कई प्रकार के मत प्रचलित हैं। एक जनश्रुति के अनुसार इनके सात पुत्रों की अकाल मृत्यु छत गिरने से हुई थी। इसके पीछे गुरु का शाप बताया जाता है। कहा जाता है कि जायसी कुरूप थे। जायसी की बाईं आँख और बाएँ कान की श्रवणशक्ति जाती रही थी। 'स्तुति खंड' में आत्म परिचय देते हुए जायसी लिखते हैं :

एक नयन कवि मुहमद गुनी। सोइ विमोहा जेहि कवि सुनी।।

चाँद जँस जग विधि औतारा। दीन्ह कलंक, कीन्ह उजिआरा।।

जग सूझा एकै नयनाहाँ। उआ सूक जस नखतन्ह माहाँ।।

× ×

एक नयन जस दरपन, औ निरमल तेहि भाउ।

सब रूपवंतइ पाऊँ गहि मुख जोहहिं के चाउ।।

परंतु मुँह की कुरूपता देख कर हँसने वाले भी इनकी कविता सुन कर द्रवित हो उठते थे, 'जेइ मुख देखा तेइँ हँसा सुना तो आए आँसु।।'

जायसी शेरशाह सूरी के शासन-काल में थे। उन्होंने लिखा है, 'सेरसाहि देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू।।' 'पद्मावत' के प्रारंभ में जायसी शेरशाह को आशीर्वाद भी देते हैं :

दीन्ह असीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज।

बादसाह तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज।।

जायसी स्पष्टतः सूफी मत से संबंधित थे। परंतु इनके गुरु के संदर्भ में भी विद्वानों में एक राय नहीं है। कुछ लोग सैयद अशरफ जहाँगीर को इनका गुरु बताते हैं, तो कुछ लोग शेख मुहीउद्दीन को। पर ये दोनों जायसी के गुरु प्रतीत नहीं होते। कुछ लोग शाह मुबारक बोलदे और शाह कमाल को भी इनका गुरु बताते हैं। 'चित्ररेखा' की पंक्तियों का हवाला देकर कालपी वाले मुहीउद्दीन महँदी को जायसी का गुरु कहा गया है :

महँदी गुरु सेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिंक अस्थानू।।

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि जायसी के जीवन में विविधता थी। उनका जीवन सपाट-समतल मैदान नहीं था। इस जीवन के संदर्भ में कुछ संकेत भले मिलते हैं, पर उसके संदर्भ में कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा जा सकता।

रचना संसार

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनकी तीन पुस्तकों का उल्लेख किया है, 'पद्मावत', 'अखरावत' और 'आखिरी कलाम'। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकों का उल्लेख भी इनके नाम पर मिलता है– 'चित्ररेखा', 'मसलानामा', 'कहरानामा', 'सखरावत', 'चंपावत', 'इतरावत' आदि। परंतु इन रचनाओं की प्रामाणिकता असंदिग्ध नहीं है। वैसे जायसी की प्रसिद्धि का आधार 'पद्मावत' ही है। संक्षेप में इनकी तीन रचनाओं की जानकारी दी जा रही है :

अखरावत

'अखरावत' को बहुत सारे विद्वान जायसी की आखिरी रचना मानते हैं। सैयद कल्बे मुस्तफा इनमें सबसे प्रमुख हैं और अन्य विद्वानों ने इनके मत को ही थोड़े हेर-फेर के साथ प्रस्तुत किया है। सैयद कल्बे मुस्तफा ने लिखा है, ''अल्फाज का इंतिखाब, जुबान की रवानिगी, बंदिश की चुस्ती पता देती है कि यह नज्म शायर जायसी के दौरे-आखिर का नतीजा है।'' इसके बावजूद इसका सटीक रचनाकाल हमें ज्ञात नहीं होता।

'अखरावत' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को ध्यान में रख कर सैद्धांतिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इस ग्रंथ का प्रारंभ जायसी ने सृष्टि की आदि शून्यावस्था से किया है। जब न गगन था, न धरती, सूर्य, चाँद। शून्य में करतार ने प्रथम पैगंबर मोहम्मद की ज्योति उत्पन्न की :

गगन हुता नहिं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।

सेसई अंधकूप महँ रचा मुहम्मद नूर।।

आखिरी कलाम

'आखिरी कलाम' की रचना, शाहे वक्त आदि के संदर्भ में जायसी ने खुद ही लिखा है। 'शाहे वक्त' के संदर्भ में जायसी ने लिखा है, 'बाबर साह छत्रपति राजा। राजपाट उन कहं विधि साजा।।' रचना समय के संदर्भ में लिखा है, 'नौ सौ बरस छतीस जो भये। तब एहि कथा के आखर कहे।।' बाबर के समय 'आखिरी कलाम' की रचना हुई। जायसी ने इस काव्य में मसनवी शैली के अनुरूप ईश्वर-स्तुति की है। साथ ही उन्होंने भूकंप और सूर्यग्रहण की भी बात की है। मुहम्मद स्तुति, बाबर की प्रशस्ति, सैयद अशरफ की वंदना, जायस नगर का वर्णन आदि के बाद उन्होंने प्रलय का वर्णन किया है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, ''जायसी

ने अपने 'आखिरी कलाम' को कुरान के अनुकरण पर ही बनाया है। प्रलय और अंतिम न्याय के दृश्य पूर्णतः इस्लाम सम्मत हैं। इस ग्रंथ में मुहम्मद साहब की महत्ता का विशिष्ट रूप से प्रतिपादन है।''

पद्मावत

जायसी की लोकप्रियता का मुख्य आधार 'पद्मावत' ही है। 'पद्मावत' के रचना समय के संदर्भ में उन्होंने लिखा है, 'सन् नौ सै सैंतालिस अहै। कथा आरंभ बैन कवि कहै।।' इस तथ्य की व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग प्रस्तुत की है। कुछ विद्वानों ने 947 हिजरी (1540 ई.) में इस रचना का आरंभ होना बताया है किंतु आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'पदमावत' की कथा के प्रारंभिक वचन का लेखन 1520 ई. में माना है। इस संदर्भ में यह भी ध्यान देना जरूरी है कि इस रचना में 'शाहे वक्त' के रूप में शेरशाह सूरी का जिक्र है, 'सेरसाहि ढिल्ली सुलतानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू।।' शेरशाह दिल्ली की गद्दी पर 1540 ई. में बैठा था। इसीलिए ज्यादातर विद्वान 1540 ई. में ही 'पद्मावत' का आरंभ स्वीकार करते हैं।

'पद्मावत' के काव्यरूप को लेकर भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। नित्यानंद तिवारी जैसे विद्वान इसे रोमांचक आख्यान कहते हैं, तो कुछ विद्वान इसे आख्यान कहते हैं। आख्यान में इतिहास मिश्रित होता है। अधिकांश विद्वान इसे प्रबंध काव्य ही मानते हैं। 'पद्मावत' एक प्रेमाख्यान है, किंतु इसकी कथा शुद्ध काल्पनिक नहीं है। इसका अंतःसाक्ष्य 'पद्मावत' में उपलब्ध है :

सन् नौ सै सैंतालिस अहा। कथा आरंभ बैन कवि कहा।।

सिंहलद्वीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी।।

अलाउद्दीन देहली सुलतानू। राघव चेतन कीन्ह बखानू।।

सुना साहि गढ़ छेंकन आई। हिंदू तुरकन्ह भई लराई।।

आदि अंत जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै।।

इन पंक्तियों में जायसी ने कहा है कि आद्यंत जैसी कथा है, उसे ही वे 'भाखा-चौपाई' में निबद्ध करके प्रस्तुत कर रहे हैं। सिंघल द्वीप की पद्मिनी की कथा जायसी ने सुनाई है। यह कथा सिंघल द्वीप की रानी से लेकर हिंदू तुर्क लड़ाई तक विस्तृत है। तात्पर्य यह कि जायसी ने जो वृत्त ग्रहण किया है वह आदि से अंत तक एक ही गाथा है। यह लोककथा के निकट जान पड़ता है। संभवतः इसीलिए चंद्रबली पांडेय का दावा है कि 'पद्मावत' की कथा 'रसपूर्ण और अत्यंत प्राचीन' है। काव्यबद्ध करने का प्रथम श्रेय जायसी को है। इस कथन की पुष्टि के लिए चंद्रबली पांडेय ने निम्न पंक्तियों का सहारा लिया है :

कवि वियास कंवला रसपूरी। दूरि सो नियर नियर सो दूरी।।

नियरे दूर फूल जस काँटा। दूरि सो नियरे जस गुर चाँटा।।

अर्थात कवि इसके द्वारा यह व्यक्त करना चाहता है कि यहाँ एक से बढ़ कर एक कवि हुए हैं और यह कथा भी रस से भरी पड़ी है, फिर भी किसी कवि से न बन पड़ा कि इस कथा को काव्य का रूप दे। यह कार्य तो मुझ जैसे अहिंदू से बन पड़ा।

ध्यान से देखने पर इस कथा का कुछ हिस्सा तो ऐतिहासिक है, परंतु कुछ हिस्सों की ऐतिहासिकता खंडित भी है। यह लोक प्रचलित कथा के ऐतिहासिक संदर्भों के सम्मिश्रण से निर्मित हुआ है।

4.3 जायसी का परिवेश

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन को दो वर्गों में बाँटा है– निर्गुण भक्ति काव्यधारा और सगुण भक्ति काव्यधारा। फिर दोनों वर्गों के दो उपवर्ग बनाए। निर्गुण के उपवर्ग ज्ञानाश्रयी शाखा तथा प्रेमाश्रयी शाखा हैं, तो सगुण के उपवर्ग कृष्ण भक्तिधारा और राम भक्तिधारा। मलिक मुहम्मद जायसी इस प्रेमाश्रयी धारा के कवि माने जाते हैं। पिछली दो-तीन शताब्दियों में जो नई स्थितियाँ पैदा हुई थीं, उसे देखते हुए प्रेमाश्रयी शाखा के कवि समाज की ऐतिहासिक अनिवार्यता के रूप में उद्‌भूत हुए। यह ठीक बात है कि तुर्कों-अफगानों के साथ हिंदुस्तान में मुस्लिम धर्मावलंबी शासक आए। इनके आने से देश में व्यापक संघर्ष का उदय हुआ और राजनीति तथा समाज दोनों हलकों में यह संघर्ष जारी था। हिंदुस्तान में इसके पहले भी विजेता बन कर अनेक जातियाँ (रेस) आई थीं। पर वे यहाँ न सिर्फ बसे, अपितु हिंदू संस्कृति और जाति में विलयित भी हो गए। इस्लाम इस रूप में पहला धर्म था, जो हिंदू धर्म में विलयित नहीं होता है। वह एक संगठित धर्म-समुदाय के रूप में भारत में स्वतंत्र रूप से अस्तित्वमान रहा। विभिन्न स्तर पर जारी दो-तीन सौ वर्षों के संघर्ष ने दोनों समुदायों के सम्मिश्रण की ऐतिहासिक आवश्यकता उत्पन्न की। इस ऐतिहासिक आवश्यकता के बीच प्रेमाश्रयी कवियों का आविर्भाव हुआ। इन कवियों में निस्संदेह जायसी सर्वश्रेष्ठ कवि थे।

कुछ विद्वान बताते हैं कि मलिक मुहम्मद जायसी एक ऐसे समय में हुए जब भारतीय समाज और जीवन में धार्मिक संघर्ष को सांस्कृतिक समन्वय में बदलने की आवश्यकता थी। जायसी आदि तमाम सूफी कवियों ने इस सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया को आरंभ किया, उसे एक विस्तृत भूमि तक पहुँचाया। मुल्ला दाउद की 'चंदायन' जायसी के पहले की रचना मानी गई

है, कुतुबन की 'मृगावती' भी जायसी के थोड़ा पहले की रचना है, बावजूद इसके, कुतुबन जायसी के आसपास के ही रचनाकार हैं। जायसी में सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रियागत पूर्णता है, संवेदनात्मक संरचना उच्च भूमि तक पहुँची हुई है, भाषा अपने निर्बाध प्रवाह के साथ है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य के इतिहास में जिसे भक्तिकाल कहा है, वह भारत में जनजागरण के विराट संदर्भों को भी निर्मित करता है। श्री रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी 'संस्कृति के चार अध्याय' और श्री रामविलास शर्मा ने अपनी विभिन्न पुस्तकों में जनजागरण के संदर्भों का उल्लेख किया है। भक्तिकालीन जनजागरण व्यापक रूप में लोकजागरण के रूप में स्वीकृत है। जनजागरण की प्रक्रिया तब शुरू होती है, जब वहाँ की बोलचाल की भाषा में साहित्य रचा जाने लगता है, जब जाति का निर्माण होने लगता है। जाति यहाँ 'कास्ट' का अर्थ नहीं देती, वह 'नेशन' अथवा 'नेशनहुड' को व्यंजित करती है। सूफी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय की जिन चेष्टाओं को हम देख पाते हैं या भाषा के रूप में अवधी के जिस विकास को देखते हैं, उसने जाति, धर्म की कठोर दीवारों को सिरे से ध्वस्त भले न किया हो, पर शिथिल अवश्य किया। इसने 'जाति' के रूप में विकसित होने की संभावनाओं को तीव्र किया। इस दृष्टि से सूफी काव्य का हिंदी साहित्य में अन्यतम स्थान है। यही वह समय है जब धार्मिक विश्वासों की रूढ़ टकराहट से ऊबा भारतीय जन, विभिन्न विचारों, व्यवहारों, विश्वासों के मध्य भक्ति के माध्यम से मनुष्य मात्र की सार्थकता की खोज करता है, उसकी एकता की खोज करता है। इसी समय हिंदू-मुस्लिम सभ्यताएँ सांस्कृतिक व्यवहार और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एक-दूसरे पर प्रभाव डालती हैं।

इसी के थोड़ा पहले कबीरदास हो चुके थे। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों संप्रदायों की धार्मिक कुरीतियों पर चोट की, उनके प्रतिनिधियों को फटकारा। इस क्रम में वे निरंतर नए रास्तों की खोज करते हैं और उस पर बढ़ते चलते हैं। जायसी या अन्य सूफी कवियों के यहाँ एक धक्के में सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता। वे इस्लाम के प्रति आस्थावान बने रहते हैं। हिंदी सूफी काव्य इस्लाम के प्रति आस्थावान होकर भी मुख्य रूप से काव्य साहित्य ही है। काव्य में भी मुख्य रूप से प्रबंध काव्य ही है। यह एक ऐसी विशेषता है जो इसे फारसी सूफी काव्य से पृथक करती है। ईरान के सूफियों ने इस्लाम की सीमा में ही प्रेम को जाना था। पर हिंदी सूफी कवि इस्लाम की सीमा का अतिक्रमण करते हैं। इसका कारण मुख्यतः सांस्कृतिक सम्मिश्रण की प्रक्रिया है। भारत आने के बाद सूफी मत का संपर्क हिंदू विचारधारा से हुआ। इससे सूफियों में कुछ नवीन भावों, विचारों का जन्म हुआ। इसके कारण ही ये सभी हिंदू जीवन में प्रचलित कहानियों को चुनते हैं। इन कवियों के यहाँ जीवन और भाषा का प्रवाह समाज से आया, तो उसकी दार्शनिकता इस्लाम से। जायसी जैसे कवि तो इस भेद को भी मिटाते से जान पड़ते हैं।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

   (क) जायसी शेरशाह के समय में मौजूद थे। ( )

   (ख) 'आखिरी कलाम' में मसनवी शैली के अनुरूप ईश्वर की स्तुति की गई है। ( )

   (ग) 'पद्मावत' पूर्णतः काल्पनिक प्रेमाख्यान है। ( )

(घ) 'अखरावत' में वर्णमाला के अक्षर को ध्यान में रखकर सैद्धांतिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। ( )

(ड़) मुल्ला दाउद की 'चंदायन' जायसी के बाद की रचना है। ( )

2. जायसी की 'पद्मावत' का परिचय दीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

3. जायसी के परिवेश प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.4 जायसी की भक्ति

मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' निर्गुण भक्ति की प्रेमाख्यान परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण है। डा. रघुवंश के अनुसार, ''जायसी की काव्याभिव्यक्ति में 'पद्मावत' पूरे प्रबंध का सांगोपांग

रूपक-विधान नहीं है। उनकी मूल दृष्टि मानवीय जीवन के विभिन्न स्रोतों तथा पक्षों पर रही है, इनमें ही आध्यात्मिक संकेत तथा व्यंजनाएँ निहित होती रही हैं।'' इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं। पहली अगर वह सांगोपांग रूपक नहीं है तो भी जीवन का रूपक तत्व है, दूसरे इसमें जो आध्यात्मिक संकेत और व्यंजनाएँ हैं वे जीवन के समानांतर और उसमें ही निहित हैं। ये आध्यात्मिक संकेत और व्यंजनाएँ ही भक्ति का उपजीव्य हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जायसी की भक्ति को कथा की समानांतरता में ही समझा जा सकता है। जायसी की भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यही कही जाएगी कि वह उस समय के जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति है।

जायसी की भक्ति में दो तथ्य समानांतर दिखाई पड़ते हैं। ऊपर जिन आध्यात्मिक संकेतों और व्यंजनाओं की बात कही गई है, वे आध्यात्मिक संकेत और व्यंजनाएँ सूफी मत से अलग हैं। इसीलिए जायसी की भक्ति को ठीक तरीके से समझने के लिए सूफी मत की सामान्य जानकारी आवश्यक है। सूफी मत इस्लाम की एक शाखा है, जो इस्लाम धर्म के वर्तमान रूप में उदय के लगभग 250 वर्षों बाद अस्तित्व में आया। सूफी मत का आविर्भाव धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध हुआ और इसका सार तत्व प्रेम है। सूफी मत लगभग 12वीं शताब्दी में भारत आया। सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'सफा', 'अहअल सुफ्फाह', 'सफ', 'सूफाह', 'बतूसूफा', 'सूफाना' एवं 'सूफ' आदि शब्दों से मानी गई है। 'सफा' पवित्रता से संदर्भित है। पवित्र सदाचारी लोग सूफी कहलाते हैं। 'सफ' अर्थात पंडित, इस मत के अनुसार कयामत के समक्ष जो लोग अपने आचरण के कारण अलग पंक्ति में खड़े किए जाएँगे, वे सूफी कहलाए। 'अहल-अल-सूफ्फा' के अनुसार मुहम्मद साहब के समय मदीने की मस्जिद नवगी के सामने 'सूफ्फा' (चबूतरा) पर आसन लगाने वाले भक्त सूफी कहलाए। 'अहल-अल-सूफ्फा' के 'सूफ्फाह' से सूफी शब्द

बना। कालांतर में 'ऐहले सुफ्फाह' ही सूफी कहलाए। कुछ लोग 'सोफिस्ता' और 'सोकिया' आदि ग्रीक शब्दों से इसकी व्युत्पत्ति बताते हैं। इन शब्दों का अर्थ 'आत्मज्ञान' से संबंधित हैं। कुछ लोग 'सूफ' शब्द से इसकी उत्पत्ति बताते हैं। अरबी शब्द 'सूफ' का अर्थ परम अथवा ऊन है। इस मत वालों का मानना है कि सूफी लोग सामान्य जन के विपरीत अच्छे वस्त्र के स्थान पर मोटा ऊनी वस्त्र पहनते थे। सूफी शब्द के उद्‌भव के संदर्भ में ये अलग-अलग विचार हैं। निश्चित रूप से शब्दों की व्युत्पत्ति का आधार विचार और व्यवहार ही है। व्युत्पत्ति के संदर्भ में भले ही एक मत न हुआ जा सकता हो, पर इतना अवश्य है और सभी मानते हैं कि सूफी संत खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे और उनका अंतिम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति है। उस ईश्वर की, जो भौतिकता से परे है। उसे वही जान सकता है, जो स्वयं को जान लेता है। स्वयं को जानने का अर्थ आत्मा को जानना है। ईश्वर का साम्राज्य हृदय के भीतर है। उसे जाने बिना ईश्वर को जाना नहीं जा सकता। शरीर पर विजय प्राप्त करने के लिए आत्मा पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। सूफियों के मतानुसार इस आत्मा पर प्रेम के द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है।

सूफी मत की पूरी साधना इस प्रेम की प्राप्ति की साधना है। इस साधना की चार अवस्थाएँ बताई गई हैं। पहली शरीयत अर्थात धर्मग्रंथों के विधि निषेधों का पालन, दूसरी तरीकत अर्थात बाह्य कर्मकांड से ऊपर होना, तीसरा हकीकत अर्थात भक्ति के द्वारा सत्य का बोध। इस अवस्था में भक्त तत्वज्ञानी हो जाता है। चौथी मारफत अर्थात आत्मा का परमात्मा में लीन होना। यही सिद्धावस्था है।

इन विचारों के दार्शनिक आधारों से प्रभावित होकर जायसी की काव्यानुभूति ने अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इस मार्ग में उन्होंने प्रेम को ही सारतत्व माना। जायसी

कहते हैं, 'प्रेमघाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई।' प्रेम का दुख हर कोई नहीं जान पाता। जिसे प्रेम होता है, वही इसका दुख जानता है। जायसी तथा अन्य समस्त प्रेमकथानक कवियों ने प्रेम को सिर्फ वैयक्तिक क्रिया या भावना के रूप में ही नहीं देखा है। वे प्रेम को जीवन के विविध पक्षों के साथ मिला कर प्रेम का व्यापक रूप प्रस्तुत करते हैं। प्रेम के व्यष्टि और समष्टि भावनाओं के समाहार में ही जायसी की भक्ति और कवित्व दोनों का विकास होता है। इसीलिए कथातत्व और दार्शनिक विचारों का भी गहरा समाहार हुआ है।

सूफियों की आध्यात्मिक भावना के अनुरूप जायसी ने भी प्रेम-तत्व को अत्यधिक महत्व दिया है। भारतीय परंपरा में प्रेम के दो पक्षों का वर्णन मिलता है– संयोग और वियोग पक्ष। संयोग पक्ष की अभिव्यंजना पद्मावती और नागमती दोनों रानियों के आश्रय से हुई है। काव्य की नायिका पद्मावती है। अतः संयोग चित्रों में पद्मावती को ही ज्यादा स्थान और महत्व मिला है। नागमती और रत्नसेन का संयोग-चित्र तो मात्र एक ही स्थान पर मिलता है। यह भी संयोग का अधूरा चित्र है। इसमें यहाँ कवि की प्रवृत्ति भाव की पूर्ण अभिव्यंजना की ओर नहीं है। यहाँ कवि ने नागमती के रूठने और फिर रत्नसेन द्वारा मना लिए जाने पर उनके संयोग का उल्लेख मात्र किया है, 'कंठलाइ कै नारि मनाई। जारी से केलि सींचि पहुलाई।'

संयोग पक्ष के वर्णन का मुख्य आधार पद्मावती और रत्नसेन हैं। इस संयोग वर्णन में कवि ने प्रथम दर्शन की उत्कंठा से लेकर मिलन तक के चित्र सहृदयतापूर्वक उतारे हैं। सबसे पहले प्रथम दर्शन की मिलनोत्कंठा का मधुर चित्र द्रष्टव्य है जिसमें राजकुमारी पद्मावती के बारात आगमन के समय, विशेष उल्लास और प्रेम की अतिशयता का चित्रण कवि ने किया है :

हुलसे नैन दरस मद माते। हुलसे अधर रंग रस राते।।

हुलसा बदन ओपि रवि पाई। हुलसि हिया कंचुकि न समाई।।

हुलसे कुच कसनी बँद टूटे। हुलसी भुजा, वलय कर फूटे।। ...

...

आजु चाँद घर आवा सरू। आजु सिंगार होइ सब चूरू।।

...

अंग-अंग सब हुलसे, कोई कतहूँ न समाइ।

ठाकहिं ठाँव बिमोही, गइ मुरछा तनु आई।।

इस संयोग वर्णन की विशेषता यह भी है कि जायसी ने इसमें काव्य परंपराओं का ही अनुपालन किया है। यहाँ रत्नसेन और पद्मावती के संयोग की अनेक स्थितियों का वर्णन किया गया है। इसमें शारीरिक भोग-विलास के चित्र हैं पर भावात्मकता को ज्यादा प्रधानता दी गयी है।

जायसी ने यद्यपि संयोग पक्ष का भौतिक चित्र उकेरा है, पर उनकी कृति सिद्धि वियोग वर्णन में ही उभरी है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी द्वारा वर्णित नागमती वियोग वर्णन को 'हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु' कहा है। जायसी ने वैसे तो रत्नसेन, पद्मावती और नागमती तीनों के वियोग का वर्णन संदर्भानुकूल किया है पर नागमती का वियोग चित्र जितना उत्कृष्ट, उत्कट और अद्वितीय बन पड़ा है वैसा अन्य दोनों का नहीं। रत्नसेन वियोग का अनुभव तब करता है जब वह पद्मावती को देख कर मूर्च्छित होता है और होश में आने के बाद उसे अपने समीप नहीं पाता। पद्मावती एक बार योग के प्रभाव से विरह अनुभव करती

है और दूसरी बार रत्नसेन के बंदी हो जाने के समय। पर इनमें नागमती की विकलता और व्यापकता नहीं है। प्रेम-निरूपण में जायसी ने विरह को अधिक महत्व दिया है। विरह की वह आत्यंतिक विशेषता है कि जीवन के लौकिक पक्ष और दार्शनिक संदर्भ साथ-साथ ही निबद्ध हैं। जैसे नागमती का वियोग नितांत लौकिक संदर्भ है पर प्रेम की आध्यात्मिकता में उसका बहुत विशिष्ट संदर्भ भी है। वर्णन की इस पद्धति में लौकिक प्रेम के समानांतर अथवा साथ-साथ अलौकिक प्रेम की व्यंजना भी होने लगती है। 'पद्मावत' की खासियत यह है कि कथा के लौकिक अथवा अलौकिक संदर्भ एक-दूसरे से टकराते नहीं हैं। पूरी कथा लौकिक संदर्भ से पढ़ी जा सकती है। पर इन अलौकिक संदर्भों को छोड़ कर भी नहीं पढ़ी जा सकती। कथा के अलौकिक संदर्भ घटनाओं (हीरामन के मुख से पद्मावती के रूप का वर्णन सुन कर मूर्च्छित होना, रत्नसेन की सिंघल यात्रा, रत्नसेन पद्मावती के मिलन-प्रसंग आदि), वर्णनों (पद्मावती का नख-शिख वर्णन, सिंहल गढ़ वर्णन, रत्नसेन की मूर्च्छित अवस्था का वर्णन आदि), संवादों (प्रेम-खंड, नागमती वियोग खंड, मान सरोदक खंड आदि) में निहित हैं। उदाहरण के लिए यहाँ एक संदर्भ देखा जा सकता है। रत्नसेन पद्मावती का रूप देख कर मूर्च्छित हो जाता है। कवि ने रत्नसेन के पुनः सचेत होने की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है :

आवत जग बालक जस रोआ। उठा रोइ 'हा ग्यान सो खोआ'।।

हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएउँ कहाँ।।

केइ उपकार मरन कर दीन्हा। सकति हँकारि जीउ हरि लीन्हा।।

इन पंक्तियों में रत्नसेन के मूर्च्छित हो जाने पर ध्यान में पद्मावती रूपी परम ज्योति के सामीप्य की जो आनंदमयी अनुभूति हो रही थी, उसी का वर्णन है।

एक अन्य प्रसंग है, जहाँ रत्नसेन के सातवें समुद्र में पहुँचने पर दुख का घट जाना, आनंद का प्रसार होना, सूर्य-किरण का उदित होना आदि कथनों के द्वारा साधक का अपनी साधना के निकट पहुँच जाना दिखलाया गया है :

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।।

गा अँधियारा, रैनि मसि छूटि। भा भिनसार किरिन रवि फूटी।।

'अस्ति अस्ति' सब साथी बोले। अंध जो अहै नैन बिधि खोले।।

साधना के निकट पहुँचते जाने से साधक के सारे भ्रमों और संतापों का नाश हो जाता है और आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप की ओर अग्रसर होती है।

अभिव्यंजना की इस शैली के कारण ही इस कथा के सब पात्र प्रतीक बन जाने की क्षमता रखते हैं। इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि अगर ये पात्र इन प्रतीकार्थों को धारण करने में सक्षम न होते, तो पूरी कथा बहुत सतही और खोखली रह जाती। जायसी ने उपसंहार में लिखा है कि मैंने इस ग्रंथ का आध्यात्मिक अर्थ पंडितों से पूछा तो उन्होंने इसकी व्याख्या करते हुए कहा, इस पृथ्वी के नीचे और ऊपर जो चौदह भुवन हैं, वे ही सब मनुष्य के शरीर में हैं :

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूछा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा।।

चौदह भुवन जो तर उपराहीं। वे सब मानुस के घट माहिं।।

इसके पश्चात कवि ने स्वयं कथा के प्रतीकों के आध्यात्मिक अर्थ दिए हैं। वह कहता है कि शरीर चितौड़गढ़ है, मन राजा, हृदय सिंहलगढ़ और पद्मावती बुद्धि का रूप है। पथ-प्रदर्शक तोता गुरु है। गुरु के बिना कोई ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। नागमती दुनियावी कार्य व्यापारों का प्रतीक है। कवि कहता है जो इसके चक्कर में पड़ता है, वह सँभल नहीं पाता। राघव चेतन को कवि शैतान का प्रतीक मानता है, तो अलाउद्दीन को माया। कवि कहता है कि 'पद्मावत' की प्रेम-कथा को इन प्रतीकों की रोशनी में ही पढ़ना चाहिए :

तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पद्मावति चीन्हा।।

गुरु सुआ जो पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।

नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न जो एहि चित बंधा।।

राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।

प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।।

कवि ने अन्यत्र कहा है कि मुहम्मद ने प्रेम कहानी कही है, जो भी इसे सुनता है वह ध्यानी हो जाता है, 'कहा मुहम्मद प्रेम-कहानी। सुनि सो ग्यानी भए ध्यानी।।' यह प्रेम ही जायसी की भक्ति का मुख्य आधार है। कहीं समुद्र है, कहीं डँसनेवाला साँप, कहीं बहेलिया – जो यौवन के पक्षी पर घात लगाए बैठा है। नागमती का संदेश दूर तक और देर तक गूँजता है :

पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग!

सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग।।

सँदेसड़ा शब्द की ध्वनि मार्मिक संकेत प्रस्तुत करती है। नागमती कहती है कि हे भौरें! हे कौवे, प्रिय को यह संदेश देना कि वह स्त्री (जिसके लिए नाम या संज्ञा अब अनावश्यक है) जल मरी। हमारे रंग रूप की कालिमा उसी के धुएँ का स्पर्श है। यह स्पष्टतः अतिकथन है, पर परिस्थिति और संदर्भ के कारण मार्मिक अभिव्यक्ति बन पड़ी है। इसी तरह के अन्य मार्मिक संकेत नागमती वियोग प्रसंग में हैं :

जेहि पंखी के निअर होइ, कहै बिरह कै बात।

सोइ पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात।।

प्रेम विरह की विषम स्थिति का यह सहज मनोविज्ञान है कि मनुष्य अपनी स्थिति की तुलना कुछ समान और कुछ विपरीत परिस्थितियों के अन्यान्य संदर्भों से करता है। जायसी ने नागमती के वियोग वर्णन में नायिका की शारीरिक और मानसिक दशाओं का चित्रण किया है। एक स्थल पर नागमती की मार्मिक स्थिति द्रष्टव्य है :

परबत समुद अगम बिच, बीहड़ धन बनढाँख।।

किमि कै भेटौं कंत तुम्ह? ना मोहि पाँव न पाँख।।

पर्वत और समुद्र रत्नसेन और पद्मावती के बीच भी है, जब वह पद्मावती से मिलने जा रहा होता है तब यह समस्या आती है कि नागमती रत्नसेन तक कैसे पहुँचे? 'ना पाँव न पाँख' यहाँ अतिव्यंजक है। यह सिर्फ स्त्री की असहायता, निरीहता या अकेलेपन का वक्तव्य नहीं है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की मर्यादा और स्वतंत्रता का भी प्रश्न है। रत्नसेन पुरुष है, तो उसके पैर हैं। वह घर की दहलीज लाँघ सकता है। लाँघ गया। पर नागमती के पाँव

घर की मर्यादा से जुड़े हैं। वह मर्यादाबोध के कारण घर का त्याग नहीं कर पाती। अन्यथा वह भी रत्नसेन के पीछे-पीछे निकल पड़ती। मर्यादाभाव के कारण ही वह पीड़ा स्वीकार करती है। इसीलिए नागमती के प्रेम संदेश में वह सरलता है, जो सीधे हृदय को छूती है, 'मोहिं भोग सौं काज न बारी। सौंह दीठि कै चाहनहारी।' नागमती कहती है कि उसे भोग की लालसा शेष नहीं रह गयी है। वह केवल प्रिय को देखना चाहती है। इस निवेदन में प्रेमजन्य तन्मयता स्वयं ही प्रकट हो जाती है। इस तन्मयता के कारण ही नागमती अपने वियोग में सबको शामिल कर पाती है। वह वन-उपवन में घूम कर अपना दुख बखानती है। पक्षियों से प्रार्थना करती है। यह संवेदनात्मक दृष्टि से बहुत बड़ी संकल्पना है।

नागमती के विरह वर्णन की एक बड़ी उपलब्धि बारहमासा भी माना जा सकता है। बारहमासा में जायसी ने अलग-अलग महीनों के अनुसार नागमती के वियोग का वर्णन किया है। शुक्ल जी ने जायसी ग्रंथावली में एक बारहमासा उद्धृत करते हुए इसका गंभीर विश्लेषण किया है :

दहि कोइला भइ कंत सनेहा। तोला माँसु रही नहिं देहा।।
रकत न रहा बिरह तन गरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा।।

× × ×

रोवँ रोवँ त धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति।।

नागमती के विरह वर्णन के अंतर्गत यह प्रसिद्ध बारहमासा है जिसमें वेदना अत्यंत निर्मल और कोमल स्वरूप में व्यक्त हुई है। हिंदू दांपत्य जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी एवं माधुर्य से ओत-प्रोत चित्र यहाँ है। अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य भावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का अत्यंत स्निग्ध, सरल,

मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है। पर इन कुछ विशेषताओं की ओर ध्यान जाने पर भी इसके सौंदर्य का बहुत कुछ हेतु अनिर्वचनीय रह जाता है। इस बारहमासा में वर्ष के बारह महीनों का वर्णन विप्रलंभ श्रृंगार के उद्दीपन की दृष्टि से है; जिसमें आनंदप्रद वस्तुओं का दुखप्रद होना दिखाया जाता है, जैसा कि मंडन कवि ने कहा है :

'जेइ जेइ सुखद, दुखद अब तेइतेइ कवि मंडन बिछुरत जदुपत्ती।'

बारहमासा में नागमती की व्यथा का जैसा सजीव और मार्मिक अंकन कवि ने किया है, वैसा हिंदी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है जायसी का काव्य जीवन का रूपक है। रूपक में प्रतीकों की संगति रहती है। 'पद्मावत' की पूरी कथा का एक आधार अगर उसकी लौकिकता और ऐतिहासिकता अथवा अर्द्ध ऐतिहासिकता में है, तो उसकी पूरी कथा इसका अतिक्रमण भी करती है। कथा के अतिक्रमण का आधार उसका ऐतिहासिक संदर्भ नहीं, दार्शनिक और आध्यात्मिक संदर्भ है।

बोध प्रश्न

4. 'सूफी' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए इस साधना पद्धति पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5. जायसी की भक्ति में प्रेम के महत्व की विवेचना कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 जायसी के काव्य में लोक जीवन

शुक्ल जी ने जायसी को भक्ति की प्रेमाख्यान शाखा का कवि माना है। प्रेम कथाओं में प्रेमी-प्रेमिका का साहचर्य, संबंध और ऐकांतिक आदर्श ही मुख्य आधार रहता है। 'पद्मावत' भी प्रेम को आधार मान कर चला है पर उस कथा के विस्तार में लोक जीवन के यथार्थ का समाहार है। जायसी की इस प्रेमाख्यान की मुख्य विशेषता है कि यहाँ प्रेम की गरिमा और

महत्ता के साथ जीवन के पारिवारिक और सामाजिक पक्ष निरंतर मौजूद रहे हैं। इसीलिए इसमें जीवन के व्यापक पक्षों का निष्पादन हुआ है।

'पद्मावत' के पूर्वार्द्ध में प्रेम-कथा के रूप में तत्संबंधी स्थितियाँ एवं मनोभावों का वर्णन है, पर उत्तरार्द्ध में जीवन के अन्य पक्षों का चित्रण है। प्रेम दो व्यक्तियों का नितांत वैयक्तिक सरोकार है। परंतु जायसी ने जिस प्रतीक विधान का निर्माण किया, उसने प्रेम को निर्वैयक्तिक बना दिया। प्रेम की यह निर्वैयक्तिकता मनुष्य मात्र की संपदा हो जाती है। इस महाकाव्योचित कहानी में जायसी ने पद्मावती को ईश्वर की अद्वितीय प्रेम सत्ता का प्रतीक बताया और रत्नसेन को प्रेम-व्याकुल जीवन का। मध्ययुगीन समाज और दर्शन में जहाँ ईश्वर सर्वोच्च सत्ता का पर्याय है, उस समाज में कवि की इस प्रतीक योजना ने प्रेम को जन तक पहुँचने का भी संदर्भ बताया और प्रेम के माध्यम से जन के ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त किया। अगर ऐसा नहीं होता, तो जायसी का पूरा कवि कर्म निरर्थक हो जाता।

संकेत प्रधान कहानी को जायसी इतने राग से कहते हैं कि लौकिक अर्थ कहीं भी धुँधला नहीं पड़ता। जायसी के लोक को या जायसी द्वारा निर्मित लोक को समझने के लिए हमें इस बात को भी समझना होगा कि जायसी का संदर्भ बिंदु क्या है? जायसी यह कथा किसके लिए कह रहे हैं। किसकी कथा तो स्पष्ट है ही। सामान्यार्थ में पद्मावती, रत्नसेन और नागमती की कहानी है तो प्रतीक में ईश्वर और जीवात्मा की। पर कथन किसके लिए है? एक स्तर पर यह प्रेम की कहानी है तो दूसरे स्तर यह प्रेम को पाने के संघर्ष और प्रेम को बचाए रख सकने के संघर्ष की भी कथा है। इस रूप में यह सिर्फ प्रेम की कथा नहीं है; प्रेम और संघर्ष की मिलीजुली कहानी है। सामान्य जन के पास जो प्रेम और संघर्ष के हथियार हैं उससे जायसी की लोक चेतना ज्यादा साफ और स्पष्ट होगी।

सामान्य जन के पास प्रेम का आधार या उसे बचाए रख सकने का आधार उनका जीवन व्यापार है। जहाँ वे लोक और विश्वास के विरुद्ध जाते दिखाई पड़ते हैं, वहाँ भी वे उन विश्वासों का अतिक्रमण नहीं करते। वे अपने प्रेम की सिद्धि उस समाज और उसके मूल्यों के बीच ही चाहते हैं। जायसी ने इस प्रेम कथा की सिद्धि समाज के बीच ही चाही और इस कारण वह समाज कहीं भी और कभी भी उनकी कविताओं से गायब नहीं हुआ। इसके बावजूद कि वे सूफी विचारों से प्रभावित थे और उनकी काव्यानुभूति की बनावट में इसका असर है, जायसी की सृजनात्मकता को लोक संस्कृति से व्यापक आधार प्राप्त हुआ।

जायसी लोक संस्कृति के विविध रूपों को अपने काव्यानुभव में घुलाते हैं। लोक संस्कृति की पहचान का अर्थ तथ्यों की सूची रखना नहीं है, न ही शब्दों की बड़ी पूँजी (जो जायसी के पास थी) ही इसे प्रस्तावित करती है, पर इनके द्वारा भी लोक संस्कृति की पहचान का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके द्वारा लोक संस्कृति के मानस का साक्षात्कार होता है, जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष इस प्रबंध से हमें प्राप्त होता है। वास्तव में शब्दों में वह लोकभूमि द्रष्टव्य होती है। जन्म-मृत्यु, राग-द्वेष, प्रेम-घृणा, शृंगार-क्रोध, मैत्री-शत्रुता, स्मृति-विस्मृति, गीत, कथा, स्थापत्य, युद्ध, आभूषण, जादू-टोना, रहस्य आदि तमाम भाव वस्तु एवं गतिविधियाँ एक-दूसरे में गूँथे हुए हैं। भोजन, शृंगार, सरोवर, शतरंज, चौगान, सौंदर्य-घटक, वेश्याओं का, पनिहारिनों का, स्त्रियों का, भोज, आनंदोत्सव, दूतियाँ आदि मिल कर 'पद्मावत' का ऐसा संसार निर्मित करते हैं जिस पर लोक संस्कृति की विशिष्ट छाप अंकित है।

'पद्मावत' का प्रारंभिक सिंघल द्वीप अंश इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है जहाँ वेश्याओं, पनिहारिनों, बाजार का चित्र है :

पानि भरै आवहिं पनिहारी। रुप सुरुप पदमिनी नारी।।

पदुमगंध तिन्ह अंग बसाहीं। भँवर लागि तिन्ह संग फिराहीं।।

लंक सिंघिनि, सारंग नैनी। हंस गामिनी कोकिल बैनी।।

पर इस सामान्य के सजीव इतिवृत्त से ही उस अद्वितीय सत्ता की भी व्यंजना हो जाती है :

माभे कनक गागरी आवहिं रूप अनूप।

जेहि के अस पनिहारी सो रानी केहि रूप।।

इसी क्रम वे हाट-व्यापार के चित्र भी हैं, जहाँ का रत्न-द्रव्य, आभरण श्रृंगार चकित करने वाला है :

'कनक हाट सब कुहकुहँ। बैठ महाजन सिंघलदीपी।।

× ×

कोई करै बेसाहनी, काहू केर बिकाइ।
कोइ चलौ लाभ सन, कोई मूर गँवाइ।।

हाट का ध्वन्यार्थ दूर तक जाता है। पर लौकिक संस्कृति की जमीन से दूरी फिर भी नहीं बनती। ये तमाम वर्णन 'पद्मावत' में श्रृंखलाबद्ध हैं। लौकिकता का अतिक्रमण 'पद्मावत' के रूपक की अनिवार्यता है पर जायसी की विशिष्टता कथन-परिवेश की उस बुनावट में है जो लोक संस्कृति के अनुभवों तथा प्रत्यक्षों के भीतर रूप लेती है।

4.6 जायसी की भाषा और काव्य सौंदर्य

कबीरदास और जायसी की भाषा की तुलना करते हुए विजयदेव नारायण साही लिखते हैं, ''एक अर्थ में जायसी हिंदी के पहले विधिवत् कवि हैं। मैं यह नहीं कहता कि कबीरदास ने

कविता के द्वारा एक अत्यंत कठिन समय में अभिव्यक्ति की समर्थ और शक्तिशाली राह नहीं बनाई। कबीरदास के पथ-प्रदर्शन और क्षमता के बिना शायद जायसी के लिए 'पद्मावत' को लिख पाना भी संभव न होता। परंतु कबीर अपनी प्रतिभा के सहारे भाषा को ठेल-ठेलकर आगे बढ़ाते हैं। उनकी कविता में इस प्रयास के चिह्न बराबर दीखते हैं। लेकिन जायसी में पहली बार हिंदी भाषा सहज काव्य-प्रवाह में बहने लगती है।'' आगे वे लिखते हैं, ''हिंदी का अवधी रूप, जिसे जायसी ने अपने काव्य-माध्यम के लिए चुना, समूचा का समूचा काव्यमय हो जाता है। कवि का प्रयास कहीं दीखता नहीं। लगता है कि समूची अवधी भाषा कविता ही है जो जायसी की क़लम से अपना स्वरूप ग्रहण करती चलती है। जब भाषा में इस तरह की अपनी स्वतःस्फूर्त गति दिखे तो हम बेखटके समझ सकते हैं कि हम एक बड़े कवि के सामने उपस्थित हैं।'' भाषा का सहज प्रवाह कवि के सामर्थ्य का वाचक है। यह मात्र विचार की तार्किकता का मसला नहीं है, कविता की संवेदनात्मक जीवंतता का संदर्भ है। साही जी भाषा की संवेदनात्मक धड़कन से जायसी के काव्य सामर्थ्य को चिह्नित करते हैं। यह बहुत महीन बात इसलिए भी है, क्योंकि विद्वानों के द्वारा जायसी की भाषा शुद्ध साहित्यिक अवधी नहीं मानी जाती। शुद्ध साहित्यिक अवधी तो तुलसीदास की थी। किंतु भाषा के रूप में अवधी जो यात्रा जायसी से तुलसीदास तक करती है वह एक स्तर पर जनभाषा से शिष्ट भाषा तक की यात्रा भी है। जायसी की अवधी लोकभाषा के अधिक निकट है। लोकभाषा में जो अनगढ़पन होता है, उसके परिष्कृत रूप में आने से पहले जो खुरदुरापन होता है, वह कविता को प्रायः गुणात्मक रूप में समृद्ध ही करता है। इस अनगढ़पन में माधुर्य की प्रतिष्ठा करके जायसी ने लोक चेतना के साथ ही अपने काव्य सामर्थ्य का भी परिचय दिया। जायसी ने कविता का जो दूरस्थ दार्शनिक आधार ग्रहण किया, वह भी लोकभाषा के कारण नई विशिष्टता

पाता है। कविता की भाषा जायसी के यहाँ निरंतर घटित होते हुए आवेगों के बीच संभव हो पाती है। भाषा में यह सब संभव हो पाया तो इसके पीछे कवि का आत्मविश्वास बहुत बड़ी निधि है। वे कहते हैं, 'जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेई।'

यह भाषा की ताकत है। पाठक जायसी के कविकर्म से गुजरता हुआ कविता की भाषिक क्षमता से भी गुजरता है। इस भाषा का माधुर्य अत्यंत सघन है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है, ''जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य 'भाषा' का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नहीं। वह संस्कृत की कोमलकांत पदावली पर अवलंबित नहीं। उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है। 'मंजु', 'अमंद' आदि की चाशनी उसमें नहीं है।'' भाषा के इस माधुर्य ने कविता को असंभावित संदर्भों से बाहर निकाला। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए, तो पूरे निर्गुण परिपाटी के काव्यत्व में माधुर्य कम ही दिखाई देता है। वह तर्कों पर आधारित है। उसे ईश्वर के सगुण रूप और जनता के सर्वस्वीकार्य रूप के समानांतर अपनी स्थापनाएँ रखनी थीं। इसीलिए निर्गुण काव्य परंपरा और उसकी पूर्वज कविता में तर्काधिक्य है। एक दूसरी बात और भी समझनी है। भक्ति की निर्गुण शाखा भक्ति के ढाँचे से बाहर नहीं है। सगुण भक्तिपरक कविताओं के समानांतर ये कविताएँ ईश्वर के लोक प्रकट रूपों का वर्णन नहीं करतीं। एक रूप में निर्गुण कविता ईश्वर के तात्विक स्वरूपों का वर्णन करती है। कबीर आदि निर्गुण संत ईश्वर के स्वरूप का वर्णन तत्व मीमांसा में ही तो करते हैं, 'जाकै मुँह माथा नहिं, नाहीं रूपक-रूप/पुहुप-बासथैं पातला, ऐसा तत्त अनूप।' जायसी आदि तमाम प्रेमाख्यान कवियों ने भी ईश्वर के स्वरूप को निर्गुण ही माना है, 'रहा आपु महँ आपु समाना'। ('अखरावत') सृष्टि के सर्गोन्मुख होने के पूर्व वह अव्यक्त था, 'बरज बीज बीरौं अस, ओहि न रंग न भेस।' परंतु जायसी आदि कवियों ने इस

'न रंग, न भेस' वाले ईश्वर की कथा, कथा और प्रबंध के माध्यम से कही। वह भी उस कथा में जो जनजीवन में व्याप्त था। कविता में माधुर्य के निर्माण में इस तथ्य की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका थी।

उपर्युक्त संदर्भ से हम एक बात और भी समझ सकते हैं। कथा में जो भाषा कही जा रही है, वह एक स्तर पर तो कथा को सहज स्वीकार्य बना ही रही थी परंतु अर्थ की समानांतरता सदैव निर्मित करती चलती है। ऐसे में इस भाषा में कल्पना, प्रतीक विधान, अन्योक्ति का महत्व बहुत बढ़ जाता है। 'पद्मावत' की पूरी कथा ही एक स्तर पर प्रतीक है। उसके तमाम पात्र प्रतीक हैं। 'पद्मावत' (ईश्वर), नागमती (सामान्य जीव), रत्नसेन (साधक), सुआ तोता (गुरु) आदि प्रतीक रूप में भी हैं। गढ़, द्वीप सब प्रतीक रूप हैं। इस संदर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि जायसी के कुछ शब्दों के पारिभाषिक संदर्भ निश्चित कर दिए गए हैं। वे इतने रूढ़ हो चुके हैं कि उसमें कोई सृजनात्मक आवेग नजर नहीं आता। इसके बावजूद प्रतीकात्मकता जायसी की भाषा का अविभाज्य अंग है।

'पद्मावत' की अन्योक्ति और समासोक्ति में प्रस्तुत-अप्रस्तुत का जैसा सुंदर विधान है, वैसा हिंदी के कम ही कवियों में दिखाई पड़ता है। अप्रस्तुत की व्यंजना के लिए जिन प्रस्तुत वस्तुओं का उपयोग किया गया है और प्रस्तुत के लिए जिन अप्रस्तुत भावों, वस्तुओं का प्रयोग है वह बहुत महत्वपूर्ण है। यह एक ओर बोध का निर्माण करती हैं, तो दूसरी ओर भावों को उद्दीप्त करती हैं। पद्मावती कमल है, शशि की ज्योति है, हँसती है, तो फूल झड़ते हैं। रोती है तो मोती बिखरते हैं।...इधर जैसे ही सूर्य (रत्नसेन) को राहू लगा, तभी कमल के मन में उसका आभास हो गया। कवि अप्रस्तुत के माध्यम से नायिका की प्रेमाभिव्यक्ति करता है, 'चार घड़ी वह ग्रसित रही, फिर विधाता ने उसके हृदय में ज्योति प्रकाशित की।'

यह पूरा वर्णन क्रम अप्रस्तुत में ही आगे बढ़ता है, 'मान नाऊँ सुनि कँवल बिगासा। फिरि कै भँवर लीन्ह मधु खासा।।' योग मार्ग की जो व्यंजनाएँ चितौड़गढ़ के प्रस्तुत वर्णन में हैं, वे रोचक भले न हों ज्ञानप्रद अवश्य हैं। जायसी के यहाँ वर्णन बहुत अधिक है। विशेषतः सिंघल द्वीप, नख-शिख, भोज, बारहमासा, चढ़ाई और युद्ध के। इससे उनकी अच्छी जानकारी और परिचय प्राप्त होता है।

जायसी कथा कहते हैं। प्रबंधात्मक कविता का सामर्थ्य इस बात से भी स्पष्ट होता है कि घटनाओं का संयोजन किसी कवि ने किस प्रकार किया है। जायसी के संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं, ''पद्मावत की कथावस्तु का प्रवाह स्वाभाविक है। केवल कुतूहल उत्पन्न करने के लिए घटनाएँ इस प्रकार कहीं नहीं मोड़ी गई हैं जिससे बनावट या अलौकिकता प्रकट हो। किसी गुण का उत्कर्ष दिखाने के लिए भी घटना में अस्वाभाविकता जायसी ने नहीं आने दी है। दूसरी बात यह है कि वर्णन के लिए जायसी ने मनुष्य जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान कर रखा है। परिणाम वैसे ही दिखाए गए हैं जैसे संसार में दिखाई पड़ते हैं। कर्मफल के उपदेश के लिए उनकी योजना नहीं की गई है।'' यह वैशिष्ट्य जायसी में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। इस प्रबंध के पूर्ण निर्वहण के लिए भाषा का समृद्ध होना भी उतना ही अनिवार्य है। जायसी की भाषिक क्षमता का अंदाजा इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि लगभग एक बोलचाल की भाषा में, जिसके साहित्य का विस्तार तब तक हो भी न पाया हो, इस समृद्ध प्रबंधात्मकता का निर्वाह उन्होंने किया।

जायसी की भाषा में अलंकरण का विशेष महत्व है। अलंकरण का संदर्भ परंपरागत भी है। जायसी के यहाँ पहले के कथनों, रूढ़ियों की स्मृति बार-बार उभरती है। परंतु जायसी की कवि प्रतिभा इस परंपरागत संदर्भ में भी अपना एक व्यक्तित्व अर्जित करती चलती है। यह

अपनापन सादृश्यों में भी है और विरोधी वस्तुओं के संगठन में भी। वही कवि की आलंकारिक योजना के पीछे काम करने वाला निजी तर्क है – खास विशेषता। इसी कारण परंपरागत उपमान होने पर भी प्रयोग संदर्भ में उपयुक्त और भावाभिव्यक्ति में सहायक हैं। यह चित्र देखिए, 'सखा रूप बिमोहा हिएँ हिलोर करेइ। पाय छुबै मनु पावौं तेहि मिसु लहरैं लेइ।।'

जायसी की कविता की भाषा निरंतर घटित आवेगों के मध्य अपनी रचनात्मक सिद्धि प्राप्त करती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि जायसी की भाषा का सहज प्रवाह, आवेग कहीं अवरुद्ध नहीं होता। जहाँ लोक और लोकोत्तर का संतुलन बाह्य धारणात्मकता तक सीमित है, वहाँ कविता की रचनात्मक सिद्धि गायब है। ऐसी स्थिति में रूढ़ प्रतीकों और धारणाओं का होना खटकता है, पर जायसी के 'पद्मावत' में ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं।

बोध प्रश्न

6. जायसी के काव्य में चित्रित लोक जीवन के विभिन्न पक्षों का उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7. जायसी के काव्य की भाषागत विशिष्टताओं का उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.7 जायसी के काव्य का वाचन और आस्वादन

काव्य का वाचन

देखिए– परिशिष्ट

काव्य का आस्वादन

- **सिंहल दीप कथा अब गावौं। औ सो पदुमिनी बरनि सुनावौं।। .....**

संदर्भ

व्याख्येय पद हिंदी साहित्य की सूफी काव्य परंपरा के अप्रतिम कवि मलिक मुहम्मद जायसी की श्रेष्ठ कृति 'पद्मावत' से लिया गया है। यह पद सिंघल द्वीप-वर्णन खंड से लिया गया है। इस पद से जायसी 'पद्मावत' की कथा की मुख्य भूमि पर उतरते हैं।

व्याख्या

जायसी कहते हैं कि अब मैं सिंघल द्वीप की कथा कहता हूँ और पद्मावती का वर्णन सुनाता हूँ। जायसी आगे कहते हैं कि वर्णन की विशेषता दर्पण की तरह होती है। जिसका जो रूप होता है उसकी शक्ल वैसी ही दिखाई देती है। वह द्वीप धन्य है जहाँ स्त्रियाँ दीपक के समान हैं और दैव ने उस पद्मावती का अवतार कराया। सब लोग सात द्वीपों का वर्णन करते हैं पर एक भी द्वीप उससे तुलनीय नहीं है। दिया द्वीप में वैसा उजाला नहीं है, सरण द्वीप उसकी बराबरी नहीं कर सकती। जंबू द्वीप भी वैसा नहीं है। लंकाद्वीप उसकी बराबरी नहीं कर सकता। कुशस्थल द्वीप में जंगल भरा है। मरुस्थल द्वीप मनुष्यों को हराने वाला है। सारे संसार में सबसे पहले ये सातों द्वीप आए। इनमें सिंघल द्वीप के समान उत्तम एक भी द्वीप नहीं है।

विशेष

(I) सिंघल द्वीप पद्मावती का निवास स्थान है। चूँकि कथा के रूपकत्व के अनुसार पद्मावती ईश्वर का पर्याय है। मध्यकालीन बोध में ईश्वर सर्वोच्च और निर्विवाद सत्ता है। अतः मध्यकालीन बोध अथवा आधुनिक सत्ता संरचनाओं में ईश्वर का निवास स्थान असंदिग्ध रूप से विशेष महत्व रखेगा। इसीलिए सिंघल द्वीप के अनेक महत्वों में एक महत्व यह भी है।

(II) ये द्वीप वास्तविक स्थलों के नाम हों, इसकी संभावना कम ही दिखाई पड़ती है। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 'यहाँ जायसी ने मध्यकालीन भूगोल की कहानियों में कल्पित सात द्वीपों का वर्णन किया है।'

- **फरे आँब अति सहान सुहाए। औ जस फरे अधिक सिर नाए। ...**

व्याख्या

आम के फल सघन रूप में फले हुए हैं। वे बहुत सुंदर लग रहे हैं। वे जैसे-जैसे फलते थे और अधिक झुकते थे। कटहल का पेड़ ऊपर से जड़ तक फलों से लदा था। उसके बड़हर अति सुंदर दिखाई पड़ते हैं। खिरनी पककर खांड जैसी मिठी हो गई है। पके जामुन भौंरों से काली दिखाई पड़ते थे। नारियल के वृक्ष फले थे, खुरहुरी फले थे– फले हुए ये ऐसे जान पड़ते थे जैसे इंद्र की नगरी अर्थात स्वर्ग हों। फिर महुआ जो चू रहा था, वह अत्यधिक मीठा था। वह शहद की तरह मीठा और पुष्प के समान सुगंधित था। और खजहरा (मेवे आदि) जिनका नाम तक मुझे ज्ञात नहीं, वे सब देखने में ऐसे हैं जैसे रावण की अमराई अर्थात पुष्पवाटिका हो। सब वृक्षों में जैसे अमृत की शाखाएँ हों, जो खाता वही लुभाता था।

सुपारी, जायफल आदि अनेक फल वहाँ भरपूर मात्रा में फले थे। आसपास इमली, तार, खजूर के वृक्ष अत्यधिक मात्रा में लगे हुए थे।

- **गंध्रपसेन सुगंध नरेसू। सो राजा यह ताकर देसू।। ...**

व्याख्या

सिंहलद्वीप का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं कि यह देश यशस्वी राजा गंधर्वसेन का है। लंका के रावण से भी बढ़कर उसकी साज-सज्जा है। उसके पास छप्पन करोड़ सैनिक थे। वह सभी छत्रपतियों के ऊपर था। उसके घुड़साल में सोलह हजार घोड़ें थे। ये घोड़ें तुषार देश के श्यमकर्ण घोड़ों के वंशज थे। ऐरावत के समान सात हजार हाथी थे। वह अश्वपतियों का सिरमौर था तथा गजपतियों को झुकाने की क्षमता रखता था। नरपतियों में वह नरेंद्र कहलाता था तथा भूपतियों में वह संसार में दूसरे इंद्र की तरह था। उस चक्रवर्ती राजा से

चारों ओर सभी भयभीत रहते थे तथा सभी आकर उसके सामने सर झुकाते थे। कोई उसके समान नहीं था।

- **जबहि दीप निअरावा जाई। जनु कबिलास निअर भा आई।। ...**

व्याख्या

उस द्वीप (सिंहल द्वीप) के नजदीक जाने पर ऐसा महसूस होता है कि मानो स्वर्ग में आ गए हों। उसके चारों ओर आम का घना बगीचा है। वह (वृक्ष) धरती से उठकर आकाश को छूता है। सभी वृक्ष मलयगिरि से लाए गए हैं। इन्हीं वृक्षों के कारण संसार में छाया रहती है तथा इसी के कारण रात होती है। इस छाँह में बहने वाला मलय समीर सुखकर लगता है। इस छाँह के कारण जेठ (गर्मी का महीना) में भी जाड़ा लगता है। वर्षा में चारों ओर हरा-भरा दिखाई देता है। पथिक धूप सहने के बाद जब यहाँ पहुँचता है तो वह सब दुख भूल जाता है। जिसे वह छाँह मिल जाती है उसे फिर धूप नहीं सहनी पड़ती। वहाँ ऐसा सघन (आम का) बगीचा है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ के वृक्ष छहों ऋतुओं में फलते-फूलते रहते हैं। वहाँ हमेशा बसंत ही रहता है।

- **बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाषा। करहिं हुलास देखि कै साखा।। ...**

व्याख्या

वहाँ के पक्षी अनेक भाषाएँ बोलते हैं तथा पेड़ों की डालियों पर उल्लास मनाते हैं। सुबह होते ही फुलसुँघनी फूलों के सुगंध लेने लगती है। फाख्ता 'एकै टूटी' के बोल बोलने लगती है। तोता और मैना चहचहाने लगते हैं। कबूतर उड़कर गिरने लगते हैं। पपीहा 'पिउ-पिउ', गुडरू 'तुही-तुही', कोयल 'कुहू-कुहू' करने लगती है। भुजंगा अनेक आवाजें निकालने लगता है।

ग्वालिन (दही बेचने वाली) 'दही-दही' की आवाज लगा रही होती है। हारिल अपनी सुनाने लगता है। मोर का कुहकना सुहावना लगता है। कौवे भी कोलाहल मचाने लगते हैं। सभी पक्षी बगीचे में बैठे हैं। सब अपनी-अपनी भाषा में ईश्वर का स्मरण कर रहे हैं।

- **पैग पैग पर कुआँ बावरी। साजी बैठक और पाँवरी।। ...**

व्याख्या

कदम-कदम पर कुआँ और तालाब है। कुएँ पर बैठक बना हुआ है, तालाब में सीढ़ियाँ हैं। जगह-जगह पर अनेक कुंड हैं तथा उनके नाम तीर्थों के अनुसार रखे गए हैं। चारों ओर मठ और मंडप हैं जिनमें जप-तप करने वाले बैठे हुए हैं। कोई श्रेष्ठ ऋषि है, कोई संन्यासी है, कोई राम का भक्त है, कोई महीने भर उपवास रखने वाला है। कोई ब्रह्मचर्य का साधक है, कोई दिगंबर मत का अनुयायी है तथा वह बिना वस्त्र के है। कोई विद्या (सरस्वती) की साधना करता है, कोई योगी है। कोई निराशा में वियोगी बन गया है। कोई शैव है, कोई शक्ति का साधक है। जैन साधु, वानप्रस्थी सिद्ध, साधक, अवधूत सभी आसन लगाकर बैठे हुए हैं।

- **मानसरोदक देखिअ अहा। भरा समुँद अस अति अवगाहा ।। ...**

व्याख्या

समुद्र की तरह दीखने वाला मानसरोवर का अगाध जल बहुत सुंदर लगता है। उसका जल मोती के समान निर्मल, कपूर की तरह सुगंधित तथा अमृत के समान है। लंका द्वीप से पत्थर मँगवाकर सरोवर का घाट बनवाया गया है। वहाँ खंड-खंड वाली घुमावदार सीढ़ी है जिस पर लोग बार-बार चढ़ते-उतरते रहते हैं। वहाँ रक्त के रंग का कमल फूला हुआ है जिसमें

सैकड़ों पंखुड़ियों का छाता बना हुआ है। सीप उलटे हो जाते हैं, उनके अंदर से मोती निकलकर जल पर तैरने (उतिराहीं) लगता है जिसे हंस चुगते हैं और क्रीड़ा करते हैं। सुनहले पक्षी ऐसे लगते हैं मानो सोने से बनाए गए चित्र हो। वहाँ चारों ओर वृक्ष में अमृत के समान फल है। उस सरोवर की सुंदरता देखकर भूख-प्यास मिट जाती है।

- **पानि भरइ आवहिं पनिहारीं। रूप सुरूप पदुमिनी नारीं।। ...**

व्याख्या

वहाँ पानी भरने के लिए पनिहारिनें आती हैं जिनका रूप बहुत सुंदर है, वे पद्मिनी स्त्रियाँ हैं। उनके अंगों में कमल का सुगंध बसता है तथा भौरें उनके संग फिरते हैं। उनकी कमर सिंहिनी के समान, नयन मृग के समान, वाणी कोयल जैसी तथा चाल हंस के समान है। वे पंक्तिबद्ध होकर समूह में आती हैं और चलती हुई बहुत सुंदर लगती हैं। मेघमाला के समान उनके बाल सिर से पैर तक लहराते हैं तथा दंत-पंक्ति बिजली के समान चमकती है। उनके सोने के कलशें तथा चंद्रमा के समान मुख चमक रहे हैं। वे प्रसन्नता के साथ आ जा रही हैं। ये स्त्रियाँ जिसके ओर देखती हैं उसे मानों टेढ़े नैन की कटारी से मारती हैं। वे सब अप्सराओं के समान सुंदर हैं। जहाँ की पनिहारिनें ऐसी हैं वहाँ की रानी का रूप कैसा होगा।

- **ताल तलावरि बरनि न जाहीं। सूझइ वार पार तेन्ह नाहीं।। ...**

व्याख्या

वहाँ के ताल-तलैयों का वर्णन नहीं किया जा सकता है। उनका कोई ओर-छोर दिखाई नहीं देता है। उसमें सफेद कमल और कुमुद ऐसे खिले हुए हैं मानो आकाश में तारे उग आए हों। मेघ उतरते हैं और पानी लेकर चढ़ते हैं। मछलियाँ बिजली की भाँति चमकती हैं। इनके

संग पानी में सफेद, पीले, रक्त के समान लाल आदि बहुत से रंग के पक्षी तैरते हैं। चकई-चकवा क्रीड़ा करते हैं। वे रात में बिछुड़ जाते हैं और दिन में मिल जाते हैं। सारस उल्लास में बोलते हैं कि जिंदगी तो हमारी है कि हम दोनों (सारस के प्रेमी जोड़े) साथ मरते हैं। केवा, सोन, ढेग, लेदी चिड़ियाँ और मछलियाँ वहाँ भरपूर मात्रा में है। उन तालों में अनमोल नग दीपक की भाँति जलते रहते हैं। जो गोताखोर होगा वह मोती देने वाले सीप को पाएगा।

- **पुनि जो लाग बहु अंब्रित वारी। फरीं अनूप होइ रखवारी।। ...**

व्याख्या

फिर जो अनेक अमृत समान फुलवारियाँ लगी हैं उनमें अनुपम फल फले हैं तथा उनकी रखवाली हो रही है। उनमें नए रंग के नींबू लगे हैं तथा जम्मीरी भी सुंदर रंग के हैं। साथ ही बादाम, अंजीर आदि हैं। गलगल नींबू, चकोतरा तथा शरीफा भी फले हुए हैं। नारंगियाँ खूब लाल और रस युक्त हैं। सेब और किशमिश नए पत्तों के साथ फले हुए हैं। अनार और दाख को देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। वहाँ जो हरपारेउरी (आँवले-सा एक छोटा फल) है वह सुंदर लगता है। केला का घउद झुका हुआ है। वहाँ शहतूत, कमरख और लीची फली हुई हैं। करौंदा, बेर और चिरौंजी के पेड़ों में फल लगे हुए है। शंखद्राव, छुहारे तथा अनेक खट्टे-मीठे मेवें के वृक्ष लगे हैं। कुएँ में गुड़ मिलाकर इन वृक्षों में मीठे पानी का शरबत दिया जाता है। रहट की घरियाँ अमृत लताओं को सींचती है।

4.8 सारांश

- मलिक मुहम्मद जायसी निर्गुण भक्ति काव्यधारा की प्रेमामार्गी शाखा (सूफी काव्य) के प्रमुख कवि हैं। अंतःसाक्ष्यों के अनुसार इनका समय 1464 ई. से 1542 ई. के बीच है।
- 'अखरावत', 'आखिरी कलाम' तथा 'पद्मावत' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।
- सांस्कृतिक सम्मिश्रण इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है।
- सूफी अराधना पद्धति के अनुरूप जायसी ने भक्ति में प्रेम तत्व को सर्वाधिक महत्व दिया है। प्रेम के संयोग तथा वियोग, दोनों पक्षों को जायसी ने अपने काव्य में पिरोया है।
- यहाँ लौकिक प्रेमाभिव्यक्तियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गई है।
- 'पद्मावत' में लोक जीवन तथा उसके सांस्कृतिक पक्षों का विशद वर्णन है। इसको बारहमासा, पनिहारी, बाजार आदि के चित्रण में देखा जा सकता है।
- जायसी की भाषा अवधी है। उन्होंने अवधी के ठेठ रूप का इस्तेमाल किया है। पद्मावत में प्रतीकत्मकता, अन्योक्ति आदि प्रविधियों का भी प्रयोग किया गया है।

4.9 शब्दावली

प्रेमाश्रयी – निर्गुण भक्तिधारा की वह शाखा जो अपनी अराधना में प्रेम को प्रधान मानती है।

ज्ञानाश्रयी – निर्गुणभक्तिधारा की वह शाखा जो माया के आवरन को हटाकर ज्ञान प्राप्ति के माध्यम से ब्रह्म से साक्षात्कार पर जोर देती है।

मीमांसा – विवेचन करना

4.10 उपयोगी पुस्तकें

- *जायसी* – विजयदेव नारायण साही; हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
- *जायसी* – रामपूजन तिवारी ; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
- *जायसी : आलोचना के निकष पर* – (सं) रविनंदन सिंह ; हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) – ✓
   (ख) – ✓
   (ग) – ×
   (घ) – ✓
   (ड़) – ×
2. देखिए– भाग 4.2
3. देखिए– भाग 4.3
4. देखिए– भाग 4.4
5. देखिए– भाग 4.4
6. देखिए– भाग 4.5
7. देखिए– भाग 4.6

इकाई 5 सूरदास का काव्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सूरदास का जीवन वृत्त और रचना संसार

5.3 सूरदास की भक्ति भावना

5.4 सूरदास की कविता में वात्सल्य

5.5 सूरदास की भक्ति में शृंगार

5.6 सूरदास की कविता में लोक जीवन

5.7 सूरदास की भाषा और काव्य सौंदर्य

5.8 सूरदास के काव्य का वाचन और आस्वादन

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11 उपयोगी पुस्तकें

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

सूरदास भक्तिकाल के शीर्ष कवियों में से एक हैं। वे सगुण भक्तिमार्ग के जितने बड़े भक्त हैं, उतने ही बड़े कवि भी। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- सूरदास के जीवन-वृत्त और रचना-संसार से अवगत हो सकेंगे;
- सूरदास की भक्ति भावना के स्वरूप का विवेचन कर सकेंगे;
- सूरदास की कविता में वात्सल्य के स्वरूप तथा वैशिष्ट्य का विश्लेषण कर सकेंगे;
- सूरदास की भक्ति में शृंगार का निरूपण तथा उसके संयोग और वियोग पक्ष का विवेचन कर सकेंगे;
- सूरदास की कविता में लोक जीवन के विविध पक्षों को जान पाएँगे;
- सूरदास के काव्य सौंदर्य और काव्य-भाषा का विवेचन कर सकेंगे; तथा
- पाठ्यक्रम में निर्धारित सूरदास के पदों की व्याख्या कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

सूरदास कृष्णभक्ति काव्यधारा के महान भक्त कवि हैं। उनकी काव्य-प्रतिभा विलक्षण और कल्पना-शक्ति अद्‌भुत थी। कवि होने से पहले सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हैं। यही कारण है कि गोसाईं विट्‌ठलनाथ ने इन्हें अष्टछाप के भक्तों में सबसे ऊँचा स्थान दिया था। सूरदास की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है, जो वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैत दर्शन पर आधारित है। वे वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व विनय और दास्य भाव के पदों का गायन किया करते थे। पुष्टिमार्ग में आने के साथ उनका वर्ण्य-विषय श्रीकृष्णलीला हो गया। सूरदास मूलतः भक्त कवि हैं। कृष्णलीला के अंतर्गत वात्सल्य और शृंगार-वर्णन उनकी भक्ति-भावना के केंद्रीय विषय हैं। इन दोनों ही भावों के महासागर में सूर की पैठ बहुत गहरी है। इसीलिए आलोचकों को इन विषयों से संबंधित अन्य कवियों की उक्तियाँ जूठी जान पड़ती हैं। सूरदास का सौंदर्य-बोध भी अद्वितीय है। प्रेमासक्त हृदय की सहज अनुभूतियों की स्वाभाविक व्यंजना में सूरदास सिद्धहस्त हैं। कृष्णलीला का वर्णन करते समय वे अपने परिवेश और समाज के प्रति सचेत रहे हैं। ब्रज की लोक-संस्कृति ने सूरदास के काव्य को जीवंतता,

स्वाभाविकता और समृद्धि प्रदान की है। इस इकाई में सूरदास के जीवन-वृत्त और उनके रचना-संसार से परिचय प्राप्त करते हुए उनकी भक्ति-पद्धति, उसके अंतर्गत वात्सल्य और श्रृंगार-वर्णन, उनकी कविता में अंकित लोक जीवन के विविध पक्षों के विश्लेषण के साथ उनके काव्य-वैशिष्ट्य पर विचार किया जाएगा।

5.2 सूरदास का जीवन वृत्त और रचना-संसार

सूरदास का जीवन-वृत्त

भक्त कवि सूरदास ने प्रत्यक्ष रूप से अपने जीवन के संबंध में कुछ नहीं कहा है, यही कारण है कि उनका कोई प्रामाणिक जीवन-वृत्त उपलब्ध नहीं हो सका है। सूर-साहित्य के आलोचकों ने विविध स्रोतों से उनके जीवन-परिचय की जो सामग्री एकत्रित की है, उसे दो भागों में रखकर समझा जा सकता है– (i) बाह्य साक्ष्य और (ii) अंतः साक्ष्य। बाह्य साक्ष्यों के अंतर्गत सूर की समसामयिक कृतियों में प्राप्त उल्लेख तथा आधुनिक विद्वानों-आलोचकों के शोधपरक विचारों को रखा जा सकता है। समसामयिक कृतियों में सांप्रदायिक-धार्मिक साहित्य आता है, जिसमें वार्ता साहित्य और पुष्टिमार्गीय साहित्य प्रमुख है। इनके अतिरिक्त नाभादास कृत 'भक्तमाल' पर लिखित प्रियादास की टीका, कवि मियां सिंह कृत 'भक्त विनोद', ध्रुवदास की 'भक्त नामावली', नागरीदास कृत 'पदप्रसंग माला', गोस्वामी हरिराय कृत 'भाव प्रकाश', जमुनादास कृत 'भाव संग्रह' तथा अष्टसखामृत' आदि ग्रंथ हैं, जिनसे सूरदास के विषय में कुछ-कुछ जानकारी प्राप्त होती है। सूर-साहित्य के आधुनिक विद्वानों-आलोचकों के विचार इतिहास-ग्रंथों, सूर विषयक शोध ग्रंथों तथा निबंधों आदि में संकलित हैं। अंतःसाक्ष्य के अंतर्गत सूरदास की रचनाओं में प्राप्त कुछ ऐसे पद आते हैं, जो उनके जीवन-वृत्त के जटिल सूत्रों को सुलझाने में सहायक हैं।

'सूरसागर' और 'साहित्य-लहरी' के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता रहा है कि सूरदास का जन्म संवत् 1540 (1483 ई.) में हुआ था। पुष्टिमार्गीय ग्रंथों में आए उल्लेख के अनुसार सूरदास वल्लभाचार्य से 10 दिन छोटे थे, जिसको आधार मानकर यह निश्चित किया गया कि सूरदास का जन्म वैशाख शुक्ल 5, संवत् 1535 (1478 ई.) को हुआ था। डॉ. दीनदयालु गुप्त ने अपनी पुस्तक 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' में इसे प्रमाणित भी किया है। सूरदास के जीवन के विषय में आज जो भी विवरण प्राप्त हैं, उनका मुख्य आधार 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' है। हरिराय कृत 'भाव प्रकाश' के अनुसार सूरदास का जन्म दिल्ली के पास सीही नामक गाँव में हुआ था। हिंदी के अधिकांश श्रेष्ठ आलोचकों – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुदंर दास, रामकुमार वर्मा तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ने इनका जन्म-स्थान आगरा के निकट 'रूनकता' को माना है, जबकि 'सूर-निर्णय' में द्वारकादास पारीख और प्रभुदयाल मित्तल ने सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के समीप सीही को माना है जिसका आधार उन्होंने 'भाव-प्रकाश' को बनाया है। इस प्रकार विभिन्न उल्लेखों व साक्ष्यों के मध्य सूरदास के जन्म-स्थान का निर्णय करना आसान नहीं है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूरदास के जीवन-परिचय का आरंभ गऊघाट से होता है, जहाँ उनकी भेंट वल्लभाचार्य से हुई थी।

जन्म-तिथि व जन्म-स्थान के समान ही सूरदास के नाम को लेकर भी विद्वानों के मध्य काफी विवाद है। 'सूरसागर' में सूरदास, सूर, सूरज, सूरजदास और सूरश्याम– उनके पाँच नामों का उल्लेख मिलता है। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने सूरज और सूरजदास आदि नामों को किसी दूसरे व्यक्ति का नाम बताया है। उन्होंने उनका सूरदास नाम ही वास्तविक माना है। अधिकांश विद्वान इसी मत के समर्थक हैं। विद्वानों के मध्य मतभेद का एक अन्य विषय है– सूरदास

का अंधत्व। उन्हें जन्मांध मानने वालों में सूर-निर्णयकार तथा आचार्य नंददुलारे वाजपेयी आदि विद्वान हैं। सूर-निर्णयकार ने हरिराय के 'भावप्रकाश' को आधार बनाकर सूरदास को जन्मांध कहा है। कुछ विद्वान सूरदास को अंधा अवश्य मानते हैं, किंतु जन्मांध नहीं। ऐसे विद्वानों में मिश्रबंधु, श्यामसुंदर दास, चंद्रवली पांडेय तथा ब्रजेश्वर वर्मा का नाम उल्लेख्य हैं। वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होते समय सूरदास अंधे थे, इस तथ्य को लगभग सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास' में लिखते हैं, ''. .. ऐसी आत्मग्लानि की अवस्था में अपनी हीनता को अतिरंजित करने की प्रवृत्ति मनुष्य में आ जाती है, ऐसे ही अवसरों पर सूरदास अपने को जन्म का अंधा और कर्म का अभागा कह देते थे। इसके अक्षरार्थ को बहुत अधिक महत्व नहीं देना चाहिए। परवर्ती पुस्तकों में केवल सुनी-सुनाई बातों का उल्लेख है। सूरदास का साहित्य कभी जन्मांध व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता।''

हरिराय कृत 'भावप्रकाश' के अनुसार सूरदास अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण थे। मात्र छः वर्ष की आयु में वे, माता-पिता को छोड़ सीही गाँव से दूर एक सरोवर के किनारे पीपल-वृक्ष की छाँव में कुटिया बनाकर रहने लगे थे। यहाँ रहते हुए उनका शकुन विद्या की ओर झुकाव हुआ और इसी विद्या के सहारे उनकी जीविका भी चलने लगी। यहीं उन्होंने गायन विद्या भी अर्जित की। मन अशांत रहने के कारण 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने इस स्थान को भी छोड़ दिया। इसके पश्चात सूरदास आगरा और मथुरा के बीच स्थित रूनकता गाँव के निकट गऊघाट नामक स्थान पर कुटी बनाकर सांसारिक विरक्ति के साथ रहने लगे। विनय और दास्य के अतिशय कारुण्य भाव वाले पदों की रचना उन्होंने इसी स्थान पर रहते हुए की। वार्ता-साहित्य के अनुसार संवत् 1576 के आसपास इसी स्थान पर सूरदास की भेंट वल्लभाचार्य

से हुई थी। आचार्य वल्लभ अपने स्थान अरैल (प्रयाग) से ब्रजयात्रा के लिए निकले थे। मार्ग में गऊघाट पड़ा। आचार्य यहीं ठहरे और उनकी भेंट एक अंधे भक्त गायक सूरदास से हुई। जब आचार्य ने सूर से कुछ गाने को कहा तो सूर ने अपने मधुर कंठ से दो पद गाकर सुनाए थे। पहला पद था – 'प्रभु हौं सब पतितन को टीकौं' तथा दूसरा था– 'प्रभु हौं सब पतितन को नायक।' सूरदास का यह दैन्यभाव आचार्य वल्लभ को पसंद नहीं आया और उन्होंने वहीं पर सूर को विधिवत अपने संप्रदाय में दीक्षित किया। आचार्य ने उनका 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कंध से परिचय कराया तथा श्रीकृष्ण-लीला-गान हेतु उन्हें प्रेरित किया। इसके साथ ही सूरदास के जीवन में एक नया मोड़ आया और वे सदा के लिए कृष्णलीला-गान में समर्पित हो गए। वार्ता-साहित्य में सूरदास की सम्राट अकबर से भेंट का भी उल्लेख मिलता है। अपने दरबारी गायक तानसेन से सूरदास द्वारा रचित एक भजन सुनकर अकबर मुग्ध हो गया था। अजमेर शरीफ की यात्रा में मथुरा-मार्ग से जाते हुए अकबर ने सूरदास से भेंट की थी। सूरदास के संदर्भ में यह भी प्रसिद्ध है कि उनकी तुलसीदास से भी भेंट हुई थी जिसका उल्लेख 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'भक्तमाल की टीका' और 'मूलगोसाईंचरित' में मिलता है।

सूरदास के जन्मकाल की तरह ही उनके मृत्युकाल को लेकर भी विद्वानों में मतभेद रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत् 1620 (1563 ई.) के आसपास सूरदास की मृत्यु का अनुमान लगाया है। ब्रजेश्वर वर्मा का अनुमान संवत् 1640 (1683 ई.) के आसपास का है। अधिकांश साक्ष्य संवत् 1640 (1683 ई.) में ही सूरदास की मृत्यु को प्रमाणित करते हैं। वार्ता साहित्य के अनुसार सूरदास को अपने जीवन के अंतिम समय का पूर्वाभास हो गया था। वे शरीर-त्याग के लिए गोवर्धन छोड़कर परसौली चले गए थे। गोसाईं विट्ठलनाथ को जब यह ज्ञात

हुआ तो उन्हें भी सूर के अंतिम समय का आभास हो गया। उन्होंने भक्तों को एकत्रित कर कहा, 'पुष्टिमार्ग को जहाज जात है, सो जाको कुछ लेनो होय सो लेउ।' यह सुनते ही गोसाईं विट्ठलनाथ के साथ समस्त भक्त-गण परसौली पहुँच गए। उनका सामना जब सूरदास से हुआ उसी क्षण सूरदास ने 'खंजन नयन रूप रस माते' भजन गाते-गाते अपना शरीर त्याग दिया।

सूरदास का रचना-संसार

सूरदास के जीवन-वृत्त की भाँति उनकी रचनाओं को लेकर भी विद्वानों के बीच मतभेद रहा है। उनके प्रति अतिशय श्रद्धा-भाव, धार्मिक मान्यताओं तथा स्वयं कवि द्वारा लिखित हस्तलिपि के अभाव के कारण सूरदास की रचनाएँ वाद-विवाद का विषय बन गईं। नागरी प्रचारिणी सभा, वार्ता-साहित्य तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त सामग्री के आधार पर सूरदास की निम्नलिखित पचीस काव्य-कृतियों का उल्लेख किया जाता है :

(i) 'सूरसागर', (ii) 'सूर-सारावली', (iii) 'साहित्य-लहरी', (iv) 'भगवत् भाषा', (v) 'सूर-रामायण', (vi) 'गोवर्द्धन-लीला' (सरस लीला), (vii) 'दशम स्कंध भाषा', (viii) 'मानलीला', (ix) 'राधा रसकेलि कौतूहल', (x) 'सूरसागर-सार', (xi) 'दानलीला', (xii) 'भँवरलीला', (xiii) 'नागलीला', (xiv) 'व्याहली', (xv) 'प्राणप्यारी', (xvi) 'दृष्टिकूट के पद', (xvii) 'सूर शतक', (xviii) 'सूरसाठी', (xix) 'सूर पचीसी', (xx) 'सेवाफल', (xxi) 'सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद', (xxii) 'हरिवंश टीका', (xxiii) 'एकादशी महात्म्य', (xxiv) 'नल दमयंती' (xxv) 'रामजन्म'।

सूर-साहित्य के अधिकांश विद्वानों ने उपर्युक्त रचनाओं में से केवल 'सूर-सारावली', 'साहित्य-लहरी' और 'सूरसागर' को ही प्रामाणिकता की दृष्टि से विचारणीय माना है।

सूरसागर

यह सूरदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसकी प्रमाणिकता पर कोई विवाद नहीं हैं। इसका मूल विषय श्रीकृष्ण का लीला-गान है जो 'श्रीमद्भागवत पुराण' पर आधारित है। 'सूरसागर' के प्रकाशित और अप्रकाशित रूप में उपलब्ध कुल पदों की संख्या 6-7 हजार के लगभग है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'सूरसागर' में पदों के कुल संख्या लगभग 4600 है। प्रो. मैनेजर पांडेय 'सूरसागर' के संग्रहात्मक रूप को ही उसका प्राचीनतम रूप मानते हैं। यह अपने मूल रूप में नित्य कीर्तन और वर्षोत्सव का संग्रह था, जिसका आगे चलकर नित्य कीर्तन, वर्षोत्सव, वसंत धमार, ग्रीष्म पद तथा रास के पद के रूप में विस्तार हुआ। 'सूरसागर' की प्राचीनतम उपलब्ध प्रतियाँ सं. 1644 (1581 ई.) से 1670 (1613 ई.) तक के बीच की अवधि की हैं, जो सूरदास के रचना-काल के आसपास की ही लगती हैं। संवत् 1753 (1696 ई.) के पहले 'सूरसागर' के द्वादश स्कंधात्मक रूपक का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

सूर-सारावली

इस रचना की प्रामाणिकता को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। कुछ आलोचक इसे सर्वथा अप्रामाणिक और परवर्ती काल की रचना मानते हैं। कुछ ने इसे 'सूरसागर' की पद्बद्ध अनुक्रमणिका ठहराकर स्वतंत्र ग्रंथ ही नहीं माना है। सूर-निर्णयकार ने इसे 'सूरसागर' से स्वतंत्र रचना माना है, जिसकी रचना 1602 (1657 ई.) में हुई थी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और आचार्य शुक्ल दोनों ने इसे सूरदास द्वारा 67 वर्ष की अवस्था में लिखे जाने की

ओर संकेत किया है। डॉ. मुंशीराम शर्मा तथा डॉ. हरवंश लाल शर्मा ने भी 'सूर-सारावली' को सूरदास की प्रामाणिक रचना माना है। जबकि डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने इसे सूरदास की रचना मानने से इंकार किया है। 'सूर-सारावली' की कोई हस्तलिखित पांडुलिपि प्राचीन रूप में उपलब्ध नहीं है और न ही इसका उल्लेख वार्ता-साहित्य में मिलता है।

'सूर-सारावली' के जिस 1002 वें पद के आधार पर विद्वानों ने इसके रचना-काल पर विचार किया है, वह पद निम्नलिखित है :

गुरू परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
शिव विधान तव कियो बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन।।

साहित्य-लहरी

सूरदास की इस रचना को लेकर भी विद्वानों में मतभेद रहा है। 'साहित्य-लहरी' 118 पदों का अलंकार प्रधान दृष्टकूट शैली का चमत्कारपूर्ण ग्रंथ है। इसकी रचना के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए वार्ताकार ने स्पष्ट किया है कि सांसारिक वासनाओं में फँसे हुए नंददास को पुष्टि मार्ग पर आरूढ़ करने के लिए नायिका भेद तथा अलंकार के माध्यम से राधा-कृष्ण के चरणारविंद में प्रवृत्त करने के लिए सूर ने इस ग्रंथ की रचना की थी। इस रचना को पढ़कर सूर के पांडित्य का बोध तो हो जाता है, किंतु नंददास इससे कितना प्रेरित हुए होंगे, कहा नहीं जा सकता। 'साहित्य-लहरी' में वर्णित नायिका-भेद, अलंकार-निरूपण तथा दृष्टकूट के चमत्कार का सूर की भक्ति-भावना से कोई तालमेल नहीं बैठता। 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की प्रामाणिक रचना मानने वालों में प्रभुदयाल मित्तल, मुंशीराम शर्मा, हरवंशलाल शर्मा आदि आलोचकों के नाम उल्लेखनीय हैं। गोवर्धननाथ शुक्ल इसे

'सूरसागर' से ही संगृहीत मानने के पक्षधर हैं। 'साहित्य-लहरी' का वर्तमान स्वरूप भारतेंदु द्वारा 1892 ई. में पटना से प्रकाशित कराया गया था।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित ग्रंथों के रचयिता के नाम बताइए।

	ग्रंथ	रचयिता
(क)	भक्तमाल	.....
(ख)	साहित्य लहरी	.....
(ग)	भक्त विनोद	.....
(घ)	भक्त नामावली	.....
(ङ)	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	.....

2. निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   (क) सूरदास कृष्णलीला वर्णन करते समय अपने ..... के प्रति भी सचेत रहे।

   (ख) सूरदास ..... से दस दिन छोटे थे।

   (ग) 18 वर्ष की उम्र में सूरदास आगरा और मथुरा के बीच रूनकला गाँव के निकट ..... नामक स्थान पर आ गए।

   (घ) सूरदास का ..... आचार्य वल्लभ को पसंद नहीं आया।

3. सूरदास और वल्लभाचार्य के बीच हुई प्रथम मुलाकात का विवरण दीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

4. सूरदास की प्रामाणिक रचनाओं का परिचय दस पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.3 सूरदास की भक्ति-भावना

'सूरसागर' का आरंभ विनय के पदों से होता है। प्रथम पद में सूरदास प्रभु के चरणों की वंदना करते हैं, 'चरण-कमल बंदौ हरि राई।' दूसरे पद में वे निर्गुण ब्रह्मोपासना की कठिनाइयों और सगुण ब्रह्मोपासना के औचित्य का उद्‌घाटन करते हैं। उनकी दृष्टि में निगुर्ण निराकार ब्रह्म की उपासना साधारण मनुष्य के लिए अत्यंत दुष्कर है। वे अपना तर्क भी इस पद में प्रस्तुत करते हैं :

अविगति गति कछु कहत न आवै।

ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ, रस अंतरगत की भावै।।

...

रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंव कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं, सूर सगुन पद गावै।।

अर्थात जो कभी जाना न जा सके, ऐसे अज्ञात निगुर्ण ब्रह्म के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। इसका अनुभव करने वाला उपासक उस गूँगे जैसा है जो मीठा फल खाकर भीतर ही भीतर उसका स्वाद लेता है। जो निर्गुण ब्रह्म रूप, आकार, गुण, जाति आदि की सीमा से परे है, ऐसे ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मन बिना किसी आधार के कहाँ-कहाँ दौड़े, उस ब्रह्म को सब प्रकार से अगम्य समझकर मैं (सूरदास) उसके सगुण-लीला का पद-गान कर रहा हूँ।

सूरदास की दृष्टि में परमब्रह्म श्रीकृष्ण के रूप में निर्गुण ब्रह्म ही सगुण-साकार हो गया है। क्योंकि निर्गुण और सगुण– दोनों ब्रह्म के ही दो रूप हैं। निर्गुण जहाँ ज्ञानाश्रित है, वहीं सगुण भक्ति का विषय है।

अंधभक्त सूरदास के विषय में सर्वविदित है कि उन्होंने जीवन के आरंभिक चरणों में निर्गुण साधना-पद्धति को अपनाकर अनेक पद लिखे थे। उनमें से एक पद यहाँ द्रष्टव्य है :

नैननि निरखि स्याम स्वरूप।
रह्यौ घट-घट व्यापि सोई, जोति रूप अनूप।।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
सूर चंद्र नक्षत्र पावक, सर्व तासु प्रकास।

मेरे नेत्र उस श्याम की छवि को निहारते हैं, जो घट-घट में व्याप्त हैं। जिसकी दिव्य सौंदर्य-आभा अनुपम है। जिसके चरण सातों पाताल हैं तथा शीश आकाश है। उसी ब्रह्म का प्रकाश सूर्य, चंद्र, नक्षत्र तथा अग्नि सभी में दिखाई पड़ता है।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वल्लभाचार्य के संपर्क में आने से पहले जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे, तब वे केवल विनय और दास्य के पद गाया करते थे। वल्लभाचार्य को भी उन्होंने इसी प्रकार का पद सुनाया था, 'प्रभु हौं सब पतितन को टीको।' इसे सुनकर आचार्य ने सूर को फटकार लगाई थी और कहा था, 'जो सूर है के ऐसो काहै को घिघियात है, कछु भगवतलीला वर्णन करि।' इस प्रकार वल्लभाचार्य के प्रभाव में आकर वे पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए तथा अष्टछाप-मंडल में सम्मिलित होकर श्रीकृष्ण के सगुण लीलागान की ओर उन्मुख हुए। पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य ने शंकर के वेदांत-सूत्रों के कुछ अंशों पर 'अणु-भाष्य' लिखकर अपने मत का प्रतिपादन किया था। वल्लभ ने कई बिंदुओं पर शंकर से असहमति दर्ज कराई। वल्लभाचार्य का दर्शन शुद्धाद्वैतवाद के नाम से प्रचारित हुआ। आचार्य वल्लभ ब्रह्म को नित्य या साकार मानते थे तथा जगत को मिथ्या की जगह नित्य मानते थे। उनकी दृष्टि में चूँकि जगत ब्रह्म द्वारा निर्मित है, ब्रह्म कारण और जगत कार्य हैं, इसलिए जगत ब्रह्म से अभिन्न है। जीव जब समूची सृष्टि को कृष्णमय देखकर उनके प्रेम में परमानंद का अनुभव करता है तब वह अपनी शुद्धावस्था में पहुँच जाता है। भगवान उस जीव से प्रसन्न होकर उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। वस्तुतः शुद्ध पुष्टिमार्ग वह है, जिसमें भगवत्प्राप्ति विषयक सभी साधनों की अनुपस्थिति हो। पुष्टिमार्ग को साधनहीन भक्तों के लिए सरलतम मार्ग माना जाता है। पुष्टिमार्ग के अनुसार जीव, देह, क्रिया भेद और फल परंपरा के आधार पर तीन प्रकार के मार्ग हैं– पुष्टिमार्ग, मर्यादा मार्ग और प्रवाहमार्ग। इसमें पुष्टिमार्ग

भक्तिमार्ग है, मर्यादा मार्ग वैदिक मार्ग है, जिसका मुख्य लक्ष्य लोक-मर्यादा की रक्षा होता है। संसार के प्रवाह में पड़कर लौकिक या भौतिक सुखों की प्राप्ति हेतु प्रयत्नरत रहना प्रवाह मार्ग है।

पुष्टिमार्गीय भक्ति का बीज तत्त्व है– भवगतानुग्रह। यहाँ पूरी भक्ति प्रभु के अनुग्रह पर आश्रित है। प्रभु के अनुग्रह से ही लौकिक व दिव्य शक्तियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। इसके लिए न तो किसी प्रकार की योग्यता की आवश्यकता है और न ही किसी प्रकार के यत्न की। यहाँ बस प्रभु-चरणों में पूर्ण समर्पण ही अपेक्षित है। जब तक भगवान अपने भक्त पर कृपा कर उसे अपने स्वरूप का बोध नहीं कराते, तब तक भगवान का अनुभव संभव नहीं है। ईश्वर-प्राप्ति का यही कृपा मार्ग पुष्टिमार्ग है। सूर का विनय-भाव उनकी भक्ति का अभिन्न अंग है। सूरसागर का आरंभ भी विनय के पद से ही हुआ है :

चरण कमल बंदौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, आंधर कौ सब कछु दरसाई।।
बहिरौ सुनै मूक पूनि बोलै, रंक चलै सिरि छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करूनामय बार-बार बंदौ तेहिं ताई।

अर्थात मैं प्रभु श्रीहरि के कमल के समान चरणों की वंदना करता हूँ। जिनकी कृपा से लँगड़ा व्यक्ति पर्वत लाँघ जाता है, अंधे को सब कुछ दिखाई देने लगता है। गूँगा बोलने और बहरा सुनने लगता है। निर्धन व्यक्ति के सिर पर राजछत्र आ जाता है। सूरदास कहते हैं कि मैं ऐसे करुणा के सागर स्वामी के उन चरणों की बारंबार वंदना करता हूँ।

सामान्यतः सूर-काव्य को दो भागों – विनय के पद और हरिलीला के पद में विभक्त कर – सूरदास की भक्ति-पद्धति का विश्लेषण-विवेचन किया जाता है। मूलतः विनय और हरिलीला

एक दूसरे से अलग नहीं हैं। प्रभुलीला गान के लिए विनय अनिवार्य है तथा विनय भक्ति-साधना की पहली सीढ़ी भी है। सूरदास की भक्ति में एक विशेष प्रकार की विकसनशीलता देखी जाती है। वह दास्य से वात्सल्य और वात्सल्य से सख्यभाव का संस्पर्श करती हुई माधुर्य भाव तक की यात्रा पूर्ण करती है। विनय के पदों में दास्य भक्ति की व्यंजना हुई है इस भक्ति का मूल आधार है– दैन्यभाव। सूर का आत्मनिवेदन की शैली में लिखा एक पद द्रष्टव्य है :

अब कैं राखि लेहुँ भगवान।

हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम डरिया, पारधी साधै बान।।

हे भगवान, अब की बार मेरी रक्षा कीजिए। मैं वृक्ष की शाखा पर असहाय बैठा हूँ और शिकारी ने मुझ पर निशाना साध रखा है।

सूरदास की भक्ति का अगला सोपान उनकी वात्सल्य-भक्ति है। वात्सल्य का स्थाई भाव स्नेह होता है और इसमें मातृवृत्ति का मनोमय अनुभव होता है। यह प्रेम का कोमलतम रूप है जो लगभग प्रत्येक प्राणी में पाया जाता है। वात्सल्य का जितना विशद, गहन, व्यापक और मर्मस्पर्शी वर्णन सूरदास ने किया है, वैसा अन्यत्र नहीं हुआ है। सूर-काव्य में वात्सल्य का सर्वाधिक सशक्त आश्रय माँ यशोदा हैं। इनके अतिरिक्त माँ देवकी, बाबा नंद तथा वसुदेव के साथ-साथ समस्त ब्रज प्रदेश भी आश्रय बना हुआ है। कृष्ण-जन्म से लेकर उनके विभिन्न संस्कारों, पालने में झुलाना, घुटनों के सहारे चलना, बाल-क्रीड़ा, माखन चोरी जैसे अनेक प्रसंगों को सूरदास ने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से वात्सल्य के पदों में अंकित किया है। बालक कृष्ण के रूप-सौंदर्य-वर्णन के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(i) कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई।

खेलत कुंवर कनक आंगन में, नैन निरखि छवि पाई।।

(ii) सोभित कर नवनीत लिए।

घुटुरूनि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए।।

बालक कृष्ण अपने हाथ में माखन लिए हुए सुशोभित हो रहे हैं। वे घुटनों के बल चल रहे हैं, उनका शरीर धूल से लिपटा हुआ है और उनके अपने मुख पर दही लिपटा हुआ है।

सूरदास के काव्य में संयोग वात्सल्य की तरह ही वियोग वात्सल्य को भी पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। कृष्ण के मथुरा-प्रस्थान का प्रसंग यहाँ उल्लेखनीय है, जिसमें माँ यशोदा मथुरा जाते कृष्ण को किसी भी प्रकार रोक लेना चाहती हैं। वियोग के भय में विह्वल माँ की लाचारी इस पद में देखी जा सकती है :

जसोदा बार-बार यौं भाखै।

है कोउ ब्रज में हितू हमारौ, चलत गुपालहिं राखै।

कृष्ण की वृंदावन-लीला में सूर की सख्य भक्ति के दर्शन होते हैं। सखा भाव से की गई भगवान की भक्ति सख्य भक्ति होती है। ब्रज के गोप-सखाओं के साथ क्रीड़ा करते कृष्ण की लीलाओं का सूरदास ने बड़ा ही सशक्त वर्णन किया है। कृष्ण अपने सभी सखाओं के साथ खेल रहे हैं :

खेलत स्याम ग्वालिन संग।

सुबल हलधर अरू श्रीदामा करत नाना रंग।।

मित्रों-सखाओं के संग खेलने में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता :

खेलत में को काको गुसैयाँ।

हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही हरि करत रिसैयाँ।।

सूरदास की भक्ति में माधुर्य भाव की भक्ति का भी श्रेष्ठतम रूप देखने को मिलता है। इस प्रकार की भक्ति में प्रेम और शृंगार भाव का समावेश रहता है। वैष्णव संप्रदाय में माधुर्य भाव की भक्ति को अन्य पद्धतियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ माना गया है। यहाँ परब्रह्म श्रीकृष्ण को पति रूप में वरण करके गोपियाँ अति आनंदित होती हैं। माधुर्य भक्ति का आदर्श रूप राधा-कृष्ण की प्रेम लीला में व्यक्त हुआ है। सूर-काव्य में राधा-कृष्ण का प्रेम किशोर वय का प्रेम है। सूर ने प्रथम दृष्टि में ही दोनों के मध्य प्रेम उपजता दिखाया है :

बूझत स्याम कौन तू गोरी।

कहा रहति, काकी तू बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी।

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका गोरी।।

(कृष्ण पूछते हैं– हे गोरी तू कौन है, तू रहती कहाँ है? किसकी बेटी है, मैंने तुम्हें ब्रज की गलियों में कहीं देखा नहीं है। सूरदास कहते हैं कि मेरे प्रभु रसिक शिरोमणि हैं इसलिए उन्होंने भोली राधा को अपनी बातों में फुसला लिया है।)

राधा-कृष्ण के माध्यम से सूरदास ने प्रेम को जिस सर्वोच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहा है वही माधुर्य भक्ति की आदर्श स्थिति है। शृंगार के संयोग पक्ष के साथ वियोग पक्ष भी सूर-

काव्य में कम प्रभावशाली नहीं है। कृष्ण के वियोग में डूबी राधा का अवसाद सूरदास ने इस प्रकार से अंकित किया है :

अति मलीन वृषभानु कुमारी।

सूरदास कैसे करि जीवैं, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी।।

अर्थात् बृषभानु की पुत्री राधा कृष्ण के वियोग में अत्यधिक उदास और दुखी है। सूरदास कहते हैं कि ब्रज की सभी गोपियाँ (युवतियाँ) कृष्ण के विरह में उनके बिना इसी प्रकार जी रही हैं।

'श्रीमद्भागवत' में निर्दिष्ट भक्ति के नौ रूपों का भी सूरदास के काव्य में पूर्ण समावेश हुआ है। सूरदास ने जिस पुष्टिमार्गीय भक्ति को अपनाया था उसमें कर्मकांड तथा बाह्याचार के लिए अधिक स्थान नहीं था, किंतु 'भागवत' की नवधा भक्ति को उन्होंने निरस्त भी नहीं किया। नवधा भक्ति के श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चना, वंदना आदि को स्वीकार कर उन्होंने अपने कई पदों में इनका उल्लेख भी किया। सूरदास ने अष्टयाम-सेवा-मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या-आरती तथा शयन के अनुसार इनसे संबंधित अनेक पदों की रचना की है।

समग्रतः सूर की भक्ति लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाली है। उनकी भक्ति का धरातल अत्यंत उदात्त और व्यापक है। वह जाति-वर्ण की संकीर्णता का निषेध करती है। इस दृष्टि से सूरदास का एक पद यहाँ उल्लेखनीय है, जिसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन से स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उनकी शरण में आने पर जाति-पाँति का कोई अर्थ नहीं रह जाता :

कह्यो शुक श्री भागवत विचार।

जाति पांति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति के दरबार।।

श्री शुकदेव ने 'भागवत' का विचार प्रकट किया। उनके अनुसार श्रीहरि के दरबार में जात-पाँत का कोई भेद नहीं है।

बोध प्रश्न

5. निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

   (क) सूरदास की दृष्टि में निराकार ब्रह्म की उपासना साधारण मनुष्य के लिए दुष्कर है। ( )

   (ख) सूरदास ने निर्गुण साधना-पद्धति से संबंधित कोई पद नहीं लिखा। ( )

   (ग) पुष्टिमार्गीय भक्ति का बीज तत्व भगवतानुग्रह है। ( )

   (घ) वैष्णव संप्रदाय में माधुर्य भाव की भक्ति को अन्य पद्धतियों से श्रेष्ठ माना गया है। ( )

   (ङ) सूरदास के काव्य में नवधा भक्ति की पूर्णतया उपेक्षा की गई है। ( )

6. सूरदास की भक्ति की विशिष्टताओं का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.4 सूरदास की कविता में वात्सल्य

सूरदास पुष्टिमार्गीय भक्त कवि हैं। पुष्टिमार्ग में इष्टदेव श्रीकृष्ण के बालरूप की अधिक मान्यता रही है। कृष्णकाव्य की परंपरा में दक्षिण के आलवार भक्तों ने कृष्ण के बालरूप को साहित्य-जगत में पहले ही प्रतिष्ठित कर दिया था। सूरदास ने वल्लभाचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् कृष्णलीला-गान प्रारंभ किया। सबसे पहले उन्होंने कृष्ण की बाल लीलाओं से संबंधित पदों की रचना की। बाललीला के प्रति जितना आकर्षण सूरदास में दिखाई पड़ता है, उतना शायद विश्व के किसी कवि में नहीं होगा। वे बालरूप और बाल मनोविज्ञान के पारंगत कवि हैं। कृष्ण के जन्म तथा शैशव से लेकर किशोरवस्था तक के क्रमशः न जाने कितने मनोहारी चित्र सूर के काव्य में अंकित हैं।

सूरदास के काव्य में वात्सल्य के दोनों पक्षों का विशद चित्रण हुआ है। पहला पक्ष संयोग वात्सल्य का है, जिसमें कृष्ण-जन्म से ही बाललीला-वर्णन का आरंभ हो जाता है। कृष्ण के जन्म का प्रसंग आता है। उनका जन्म हो चुका है, नंद के द्वार पर चहल-पहल व आनंदातिरेक का वातावरण है। इस उत्सव में स्वयं को सम्मिलित होने से सूरदास रोक नहीं पाते और वहाँ पहुँचकर नंद से कहते हैं :

(नंद जू) मेरे मन आनंद भयौ, मैं गोवर्धन तैं आयौ।

तुम्हरे पुत्र भयौ हौं सुनि के, अति आतुर उठि धायौ।

नंदराइ सुनि विनती मेरी, तबहिं विदा भल ह्वै हौं।

जब हँसि कै मोहन कछु बोलै, तिहि सुनि कै घर जाऊँ।

हौं तो तेरे घर की ढाढ़ी, सूरदास मोहिं नाऊँ।।

(हे नंद जी तुम्हारे घर पुत्र का जन्म हुआ है यह सुनकर मैं अपने को रोक नहीं पाया। मेरा मन आनंद से भर गया। मैं गोवर्धन पर्वत से आ रहा हूँ। हे नंद जी मेरी आपसे विनती है कि जब मोहन एक बार हँस कर कुछ बोल देते हैं उसे सुनने के बाद ही मैं वापस जाऊँगा। मैं आपके घर पुत्र जन्म पर बधाई गाने वाले के रूप में ही आया हूँ, सूरदास मेरा नाम है।)

यहाँ एक ओर कृष्ण का जन्म होता है तो दूसरी ओर वात्सल्य सम्राट का भी नव जन्म होता है। बढ़ते हुए बालकृष्ण के साथ ही सूरदास की वात्सल्य दृष्टि भी क्रमशः तरूणाई प्राप्त करती जाती है। संयोग वात्सल्य के अनेक मनोहारी चित्र सूरकाव्य में अंकित है। इनमें से कुछ पद यहाँ उल्लेखनीय हैं :

(i) रूप-सौंदर्य :

कहाँ लौं बरनौ सुंदरताई।

खेलत कुंवर कनक आंगन में, नैन निरखि छवि छाई।।

(ii) बाल-क्रीड़ा :

किलकत कान्ह घुटुरूवनि आवत।

मनिमय कनक नंद के आंगन, बिंब पकरिबे धावत।।

(iii) मातृ-अभिलाषा :

जसुमति मन अभिलाषा करै।

कब मेरो लाल घुटुरूवनि रेंगै, कब धरती पग द्वैक धरै।।

कब द्वै दंत दूध के देखौं, कब तुतरे मुख-बैन झरै।।

(माँ यशोदा के मन में अभिलाषा होती है कि कब मेरा पुत्र घुटनों के बल चलेगा और वह कब धरती पर अपने दोनों पैर रखेगा। कब मैं उसके दूध के दो दांत देखूँगी और कब उसके मुख से तोतली वाणी निकलेगी।)

(iv) बालहठ :

मैया मैं तो चंद खिलौना लैहों।

जैहों लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहों।।

(v) बाललीला :

मैया मैं नहिं माखन खायो।

ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायो।।

(vi) बालक्षोग :

खेलत में को काको गुसैयां।

हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयां।।

(vii) मातृ-आशंका :

लालन वारी या मुख ऊपर।

माई मोरहि दीठि न लागै, ताते मसि-बिंदा दियो भ्रू पर।।

(माँ यशोदा कहती हैं– हे लाल ! मैं तेरे ऊपर स्वयं को न्योछावर करती हूँ। मेरी ही नजर मेरे लाल को न लग जाए, इस आशंका से मैंने इसकी भौंहों पर काजल का टीका लगा दिया है।)

सूरदास के वात्सल्य संबंधी पद उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-क्षमता का सशक्त प्रमाण हैं। वह चाहे बालक कृष्ण का रूप-सौंदर्य हो या उनका बालहठ, उनकी बाल सुलभ लीलाएँ हो या माँ यशोदा के भीतर पल रही अभिलाषाएँ– सभी प्रसंगों के वर्णन में सूरदास ने अपने मनोविज्ञान-बोध और कलात्मक प्रौढ़ता का परिचय दिया है।

सूरदास के काव्य में संयोग-वात्सल्य की तरह ही वियोग-वात्सल्य में भी नंद और यशोदा मुख्य-आश्रय हैं। जब कृष्ण मथुरा-गमन के लिए तैयार होते हैं तो माँ यशोदा की मातृसुलभ व्याकुलता बढ़ जाती है। उनकी आँखें आसपास किसी ऐसे हितैषी की तलाश करने लगती हैं, जो जाते हुए कृष्ण को किसी तरह रोक ले :

(i) जसोदा बार-बार यौं भाखै।
है कोउ ब्रज में हितू हमारौ, चलत गुपालहिं राखै।।
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्रान हरन कौ, काल रूप ह्वै आयौ।।

(यशोदा बार-बार यह कहती हैं कि ब्रज में ऐसा कोई मेरा अपना है जो गोपाल को यहाँ से जाने से रोक ले। मेरे छोटे बालक से क्या काम पड़ा कि राजा ने उसे मधुपुरी बुलाया है। अक्रूर मेरा प्राण हरने के लिए काल बनकर आया है।)

(ii) कमलनयन गुन टेरत-टेरत, अधर वदन कुम्हिलानी।

'सूर' कहा लगि प्रकट जनाऊँ, दुखित नंद जु की रानी।।

(कमल के समान आँखों वाले कृष्ण के गुण गाते-गाते माँ यशोदा के होठ और मुख जीर्ण पड़ गए हैं। सूर कहते हैं कि उनकी पीड़ा का वर्णन कहाँ तक करूँ?)

सूरदास को मातृहृदय के अंतस्तल का गहरा बोध है। वे पुत्र-वियोग के भय से आक्रांत माँ की पीड़ा को समझते हैं, इसलिए यशोदा के दुख को भली भाँति यहाँ उन्होंने व्यक्त किया है, कृष्ण-गमन का समाचार सुनकर यशोदा को गहरा आघात लगा :

यह सुनि गिरी धरनि झुकि माता।

कहा अक्रूर ठगौरी लाई, लिये जात दोउ भ्राता।

(कृष्ण के गमन का समाचार सुनते ही माँ यशोदा धरा पर गिर गईं। अक्रूर कौन-सी ठग विद्या लेकर आए जो अपने साथ दोनों भाइयों को लिए जा रहे हैं।)

कृष्ण के प्रवास-काल में उद्धव के ब्रज-आगमन पर गोपी-उद्धव-संवाद में भी माँ यशोदा की विरह दशा का वर्णन हुआ है। ये वे पुत्र की कुशलता के लिए चिंतित-आशंकित रहती हैं। गोपियों की तरह ही वे भी उद्धव के द्वारा देवकी को एक माँ का संदेश भेजती हैं कि वे तो देवकी के पुत्र कृष्ण का पालन-पोषण करने वाली एक धाय मात्र हैं, फिर भी उस पुत्र की चिंता यशोदा को दिन-रात लगी रहती है :

संदेसो देवकी सो कहियो।

हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।।

जदपि टेव तुम जानतिं उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै।

प्रात होते मेरे लाड़ लड़ैतै, माखन रोटी खावै।।

इस पद में सूरदास ने मातृहृदय का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। वे निश्चित रूप से वात्सल्य रस के सम्राट कवि हैं। वे बालकृष्ण के रूप-सौंदर्य और उनकी लीलाओं पर ही मुग्ध नहीं हैं, अपितु माँ यशोदा के वत्सल भाव पर भी उतने ही मुग्ध हैं। अपने वात्सल्य-वर्णन में सूर ने जिन उपमाओं और रूपकों का सहारा लिया वे उनके हाथों में आकर साहित्याकाश में अमर हो गए। आज भी सूरदास वात्सल्य-वर्णन के साहित्यिक मानदंड बने हुए हैं।

5.5 सूरदास की भक्ति में शृंगार

काव्यशास्त्र में जो शृंगार रस है वही भक्ति के क्षेत्र में मधुर रस है। प्रेमभाव का ही दूसरा रूप माधुर्य भाव है। सूरदास पुष्टिमार्गीय भक्त कवि हैं जिनके काव्य में प्रेमभक्ति या माधुर्य भक्ति की महत्ता है। इसके अंतर्गत सूरदास का मुख्य वर्ण्य-विषय राधा-कृष्ण का प्रेम तथा गोपी-कृष्णप्रेम के प्रसंग हैं जो पूर्णतया शृंगार भावना से अनुप्राणित हैं। काव्यशास्त्र में शृंगार को रसराज कहा जाता है और ऐसा माना जाता है कि इसमें सभी रस समाहित हो जाते हैं। सूरदास का काव्य अपनी समग्रता में माधुर्य भाव पर आधारित काव्य है।

सूरदास के काव्य में वर्णित कृष्णलीला के कई आयाम हैं। इसमें एक ओर जहाँ राधा-कृष्ण का प्रेम है तो दूसरी ओर गोपियों और कृष्ण का। इन दोनों ही प्रेम-प्रसंगों के बीच की जो सबसे बड़ी धुरी है, वह है कृष्ण का दिव्य-अलौकिक सौंदर्य। कृष्ण का यही अलौकिक सौंदर्य संपूर्ण प्रेमलीला की नित्य शक्ति है। सूरदास के यहाँ प्रेम की उत्पत्ति और विकास में रूप-

आकर्षण और साहचर्य– दोनों की बड़ी भूमिका है। यहाँ बाल्यावस्था का आकर्षण किशोरवस्था और यौवनावस्था तक आते-आते प्रौढ़ और परिपुष्ट हो जाता है। राधा और कृष्ण का प्रथम संपर्क एक दूसरे के रूपाकर्षण और सम्मोहन में बाँध देता है। यहीं से दोनों के बीच प्रेम की उत्पत्ति सूरदास ने दिखाई है :

खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी।

कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लिए भौंरा चक डोरी।।

मोर मुकुट, कुंडल श्रवननि वर, दसन दमक दामिनि छवि छोरी।

गए स्याम रवि तनया के तट, अंग लसति चंदन की खोरी।

औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विसाल भाल दिए रोरी।।

...

सूर स्याम देखत ही रीझैं, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी।।

(श्रीकृष्ण खेलते हुए ब्रज की गलियों में निकल गए। उन्होंने कमर में कछनी अर्थात छोटी धोती और पीला वस्त्र बाँधा हुआ था तथा हाथ में लट्टू और डोरी लिए हुए थे। उनके सिर पर मोरपंख का मुकुट और कानों में सुंदर कुंडल थे। उनके दाँतों ने मानो बिजली की दमक छीन ली हो। खेलते-खेलते कृष्ण यमुना के किनारे पहुँच गए। उनके शरीर पर चंदन का लेप सुशोभित हो रहा था। उन्होंने वहाँ अचानक ही राधा को देखा जिनके नेत्र विशाल थे और जिन्होंने मस्तक पर रोली का टीका लगाया हुआ था। ... सूरदास कहते हैं कि राधा को देखते ही श्याम-सुंदर कृष्ण उन पर मुग्ध हो गए और दोनों के नेत्र परस्पर मिलते ही उन पर सम्मोहन व्याप्त हो गया।)

राधा और कृष्ण के बीच उपजा यह आकर्षण प्रेम का प्रथम सोपान है। दोनों में मिलन की उत्कंठा तीव्र हो उठती है। सूरदास दोनों के हृदय में एक साथ झाँकते हैं और उनकी अनुभूतियों को यहाँ शब्द देते दिखाई पड़ते हैं :

प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ।

नैन-नैन की-हीं सब बातें, गुह्य प्रीति प्रगटान्यौ।।

क्रमशः राधा-कृष्ण का प्रेम प्रगाढ़ होने लगता है। राधा भी किसी न किसी बहाने कृष्ण से मिलने का अवसर ढूँढ़ती रहती हैं। बाल्यकाल में खेलने का बहाना सबसे अधिक उपयुक्त और अचूक होता है :

खेलन कैं मिस कुंवर राधिका, नंद महरि कै आई।

सकुच सहित मधुरै करि बोली, घर हो कुँवर कन्हाई।।

सूर-काव्य में कृष्णलीला का एक अहम हिस्सा वेणु-प्रसंग का है। मुरली की मोहक धुन राधा और गोपियों के साथ-साथ समूचे ब्रजमंडल को अपने अधीन कर लेती है। एक ओर कृष्ण का मोहक रूप है तो दूसरी ओर उनके द्वारा बजाई गई मुरली की मधुर तान जिसके जाल में फँसकर गोपियाँ व्याकुल और अधीर हो उठती हैं। जो मुरली कृष्ण को अपने वश में रखती है, गोपियों का उसके प्रति ईर्ष्या-भाव भी स्वाभाविक है :

(i) मुरली मोहे कुंवर कन्हाई।
अँचवति अधर सुधा बस कीन्हे, अब हम कहा करै री माई।।
....
अब सुनि सूर कौन बिधि कीजै, बन की ब्याधि माँझ घर आई।।

अर्थात मुरली ने कृष्ण को मोह लिया है। वह कृष्ण के अधर-सुधा का पान करती है और इस प्रकार उसने कृष्ण को अपने वश में कर लिया है। हे सखी अब मैं कौन सा यत्न करूँ? ... सूरदास कहते हैं कि गोपियों को कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। वन की यह व्याधि (बीमारी) आज घर में आ चुकी है।

(ii) मुरली तऊ गुपालहिं भावति।

सुन री सखी जदपि नंदलालहिं, नाना भाँति नचावति।।

सूरदास के काव्य में कृष्ण और गोपियों के बीच का प्रेम केवल ह्रदय के बंद कपाटों के भीतर तक सीमित नहीं रहता, वह वहाँ से निकलकर गोकुल की गलियों, पनघट, जमुना-तट सहित संपूर्ण ब्रज-प्रदेश में व्याप्त हो जाता है। पनघट-प्रसंग के कुछ दृश्य प्रस्तुत हैं :

(i) पनघट रोके रहत कन्हाई।

जमुना जल कोउ भरन न पावै, देखत ही फिर जाई।।

(ii) री हौं स्याम मोहिनी घाली।

अबहिं गई जल भरन अकेली, हरि चितवन उर साली।।

अर्थात हे सखी ! मैं तो श्याम के मोहिनी रूप का शिकार हो गई हूँ। अभी मैं अकेली जल भरने गई थी। वहाँ उनकी चितवन (दृष्टि) ने मेरे ह्रदय को घायल कर दिया।

गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में पड़कर लोकलाज और मर्यादा को त्याग देती हैं। उनको प्रेम-मार्ग में कोई बंधन स्वीकार्य नहीं है। गोपियों का मानना है कि जिस ब्रह्म ने इस शरीर की सृष्टि की है, उससे इस शरीर की दूरी क्यों? उससे लज्जा क्यों? पुष्टि मार्ग में शरीर को भी ब्रह्म

की तरह नित्य माना गया है। इसीलिए यहाँ गोपियाँ सांसारिक लोकलाज को त्यागकर कृष्णमय हो जाना चाहती हैं :

लोक सकुच कुल-कानि तजी।

जैसे नदी सिंधु को धावै वैसेहि स्याम भजी।।

मात-पिता बहु त्रास दिखायौ, नैकु न डरी लजी।

मानति नहीं लोक-मरजादा, हरि के रंग मजी।

सूर स्याम को मिलि चूनौ, हरदी ज्यौं रंग रजी।।

अर्थात हमने लोक-लाज और कुल-मर्यादा सबका त्याग कर दिया है। जिस प्रकार नदी दौड़ती हुई जाकर सागर से मिलती है। उसी प्रकार हम कृष्ण में मिलकर कृष्णमय हो गई हैं। हमारे माता-पिता ने हमें अनेक प्रकार से डराया-धमकाया किंतु हम तनिक भी नहीं डरीं और न ही लज्जित हुईं। हम अब लोक-मर्यादा को नहीं मानती हैं क्योंकि हम पूरी तरह कृष्ण के रंग में रंग चुकी हैं। सूरदास कहते हैं कि ये कृष्ण के प्रेम में ऐसे कृष्णमय हो गई हैं जैसे हल्दी और चूना परस्पर मिलकर एक रंग हो जाते हैं।

सूरदास ने जितनी सजगता और कलात्मकता से संयोग-श्रृंगार का वर्णन किया है, वियोग-वर्णन में भी वही सजगता और कलात्मकता दिखाई पड़ती है। उन्होंने मानव-मन की अतल गहराइयों में झाँककर उनमें स्थित भावों तथा विभिन्न अंतर्दशाओं की सूक्ष्म-कलात्मक अभिव्यक्ति की है। सूरदास के काव्य में वियोग-वर्णन के मुख्यतः तीन स्थल हैं। पहला, नंद-यशोदा का वात्सल्यजनित वियोग; दूसरा, राधा तथा गोपियों का दांपत्य अथवा मधुर भक्तिजन्य विरह और तीसरा कृष्ण का माता-पिता, मित्रों, सखाओं, गोपियों तथा समस्त ब्रज प्रदेश के

प्रति वियोग। ये सभी प्रसंग मिलकर सूरदास के विप्रलंभ शृंगार का एक संपूर्ण ताना-बाना तैयार करते हैं। कृष्ण के प्रवास के पश्चात समूचे ब्रज के लिए वियोग की पीड़ा असह्य हो गई। गोपियों को संयोग के समय शीतलता देने वाला चंद्रमा अब वेदना में वृद्धि करने लगा है। सारी रात तारे गिन-गिन कर बीतने लगी है। एक गोपी अपनी यह वेदना प्रस्तुत करती हुई कहती है :

माई मोको चंद लग्यौ दुःख दैन।

कहँ वे स्याम कहाँ वै बतियाँ, कहँ वै सुख की रैन।।

तारे गनत गनत ही हारी, टपकन लागे नैन।

सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, विरहिनि को नहिं चैन।।

वियोग-शृंगार की दृष्टि से सूरदास का 'भ्रमरगीत' विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य में से एक है। यहाँ विरहविदग्ध हृदय की जितनी वैविध्यपूर्ण अंतर्दशाएँ देखने को मिलती हैं, अन्यत्र शायद ही मिलें। ब्रज पहुँचकर उद्धव जब गोपियों को कृष्ण का संदेश सुना रहे थे कि वहाँ एक भौंरा आ पहुँचा। यहीं से 'भ्रमरगीत' की शुरूआत हुई है। पूरा का पूरा 'भ्रमरगीत' वक्रोक्तियों से पटा पड़ा है। यहाँ गोपियाँ उद्धव के निर्गुण-ज्ञान का उपदेश सुनकर अपनी वाक् चातुरी से उद्धव को जगह-जगह निरूत्तर कर देती हैं। गोपियों द्वारा सगुण कृष्ण के प्रति प्रेम और समर्पण देखकर उद्धव फेर में पड़ जाते हैं। गोपियों के वाग्वैदग्ध्य को देखकर ही आचार्य शुक्ल ने लिखा, ''सूरदासजी में जितनी सहृदयता और भावुकता है प्रायः उतनी चतुरता और वाग्विदग्धता भी है। ... गोपियों के वचन में कितनी विदग्धता और वक्रता भरी है।''

गोपियाँ उद्धव के कहने से कृष्ण के प्रेम को कैसे भुला सकती हैं। कृष्ण की छवि को हृदय से निकालना सरल कहाँ है :

इहिं उर माखनचोर गड़े।

अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े।।

केवल गोपियाँ ही नहीं, समूचा ब्रज कृष्ण के वियोग में तड़प रहा है। गोपियाँ उद्धव से विनती करती हैं कि वे शीघ्र कृष्ण को ब्रज ले आएँ। ऐसा करके उन्हें संतो के बीच यश की प्राप्ति होगी :

ऊधो स्यामहिं तुम लै आओ।

ब्रज-जन चातक प्यास मरत हैं, स्वाति बूँद बरसाओ।।

ऐसा नहीं है कि ब्रज का यह वियोग एकतरफा है। कृष्ण को भी ब्रज की स्मृतियाँ उतनी ही विह्वल करती हैं। उद्धव के ब्रज से मथुरा लौटने के पश्चात कृष्ण भी अपनी मनोदशा को उद्धव से साझा करते हैं :

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।

हंस सुता की सुंदर कगरी, अरु कुंजन की छाहीं।।

(हे उद्धव मुझसे ब्रज भुलाए नहीं भूलता। यमुना का वह सुंदर किनारा और सुंदर वृक्षों की छाया अब भी मेरी स्मृतियों में बसी हुई है।)

समग्रतः सूरदास का शृंगार-वर्णन काव्यशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक– दोनों ही दृष्टियों से सशक्त है। इसमें जितनी गहनता है उतनी ही व्यापकता भी विद्यमान है। सूरदास के काव्य में प्रेम-शृंगार की अभिव्यक्ति भक्ति का ही परिपुष्ट रूप है, जहाँ सभी भाव आकर भक्ति के सागर में समाहित हो जाते हैं।

बोध प्रश्न

7. सूरदास के वात्सल्य वर्णन की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

8. सूर के काव्य में अभिव्यक्त गोपियों के वियोग का वर्णन कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....
.....
.....
.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.6 सूरदास की कविता में लोक जीवन

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार, ''लोक मनुष्य-समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य-संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और अंहकार से शून्य है, और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।'' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में लोक को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''लोक का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों ग्रामों में फैली वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोक .. . अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं।''

सूरदास ने अपने काव्य में ब्रज प्रदेश को श्रीकृष्ण की लीलाभूमि मानकर इसकी सीमा चौरासी कोस मानी है। मथुरा, वृंदावन और उसके समीपस्थ स्थानों को मिलाकर बने भू-प्रदेश को ब्रजप्रदेश या ब्रजमंडल कहा गया है। 'सूरसागर' में ब्रज का लोक जीवन विस्तृत और वैविध्यपूर्ण रूप में विद्यमान है। सूरदास के काव्य में मध्यकालीन ब्रज-संस्कृति के दो पक्ष मुख्य रूप से उभरकर आते हैं। एक नगर-संस्कृति है, जिसका प्रतिनिधित्व मथुरा जैसे नगर करते हैं और दूसरी ग्रामीण संस्कृति है, जिसका प्रतिनिधित्व ब्रज का ग्रामीण अंचल करता है जो किसानों-चरवाहों का अंचल है, जहाँ पशुपालन या गोचारण कृषि-कर्म का ही एक अनिवार्य हिस्सा है। सूर के काव्य में ब्रज का यह ग्रामीण अंचल अपनी विविधता और सजीवता के

साथ उपस्थित है। 'सूरसागर' के आरंभिक विनय के पदों से ही किसान-जीवन की अनेक वास्तविकताएँ दिखाई पड़ती हैं, जिनका अपना एक निश्चित ऐतिहासिक-सामाजिक संदर्भ है। किसान का मुख्य कर्म खेती होती है। सूरदास अपने परिवेश की संस्कृति के प्रति अत्यंत सजग साहित्यकार हैं। वे कृषि-कार्य की एक-एक प्रक्रिया से अवगत हैं, जिसका बोध उन्होंने जगह-जगह कराया है :

प्रभु जू यौं कीन्हीं हम खेती।

बंजर भूमि गाउं हर जोते, अरू जेती की तेती।।

काम क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रज तामस सब कीन्हौं।

अति कुबुद्धि मन हाँकन हारे, माया जूआ दीन्हौं।।

इंद्रिय-मूल-किसान, महातृन-अग्रज-बीज बई।

जन्म जन्म की विषय-वासना उपजत लता नई।।

(हे प्रभु! सांसारिक जीवन में रहते हुए मैंने इस प्रकार की खेती की है। ये सांसारिक जीवन बंजर भूमि है, जिसे हर गाँव वाले ने जोता है। फिर भी यह है कि बंजर की बंजर ही रह गई। काम और क्रोध नामक दो शक्तिशाली बैलों ने मिलकर राजसी और तामसी दोनों प्रकार के कर्मों की खेती की। अत्यधिक कुबुद्धि से युक्त हमारा मन इन बैलों को हाँकने वाला था, जिसने इनके कंधों पर माया रूपी जुआ रख दिया। मूल इंद्रियाँ किसान बनीं जिन्होंने महातृण (फसल) के लिए अपने अनुसार बीज बो दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि जन्म-जन्मांतर की विषय-वासनाओं की नई लताएँ लहलहाने लगीं।)

किसान को खेती के कार्य में जिन-जिन वस्तुओं, लोगों तथा व्यवस्थाओं का सामना करना पड़ता है, उन सबका एक-एक करके उल्लेख सूरदास ने इस पद में किया है :

पंच-प्रजा अति प्रबल बली मिलि, मन-विधान जौ कीनौ।

अधिकारी जम लेखा माँगै, तातैं हौं आधीनौ।।

घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ जौन दियैं मैं छूटौं।

धर्म जमानत मिल्यौ न चाहे, तातैं ठाकुर लूटौं।।

(अत्यंत प्रबल पंच इंद्रिय रूपी प्रजा ने शक्तिशाली मन से मिलकर कर्म विधान की रचना की। अब यम रूपी अधिकारी कर्मों का लेखा-जोखा माँगता है, जिसके समक्ष मैं अधीन और बेबस हूँ। मेरे घर में तुम्हारे भजन-स्मरण की पूँजी भी नहीं है जिसे देकर मैं छूट सकूँ। धर्म की जमानत देने वाला भी कोई नहीं मिलता, फलस्वरूप ठाकुर रूपी यमराज मुझे लूट रहा है।)

यहाँ अधिकारी, पटवारी, जमींदार सभी का उल्लेख उन्होंने किया है जो तत्कालीन कृषक-वर्ग का शोषण कर रहे थे। सूरदास का समाज निश्चित रूप से खेतिहर समाज रहा होगा। फलतः किसानों के जीवन की छोटी से छोटी चीज को उन्होंने जाने-अनजाने आत्मसात कर लिया था। सूरदास जब भी भावमग्न होकर कविता करते थे तो ये छोटी-छोटी चीजें स्वतः ही कविता में अपना स्थान बना लेती थीं।

सूरदास के कृषि-ज्ञान को पुष्ट करने वाला एक और पद यहाँ प्रस्तुत है, जो गोपी-उद्धव-संवाद से संबंधित है। निर्गुण और योग-साधना का उपदेश सुनकर गोपियों की प्रतिक्रिया इस पद में देखी जा सकती है :

आए जोग सिखावन पांड़े।

परमारथी पुराननि लादे, ज्यों बनजारे टांड़े।।...

सूरदास तीनों नहिं उपजत, धनिया, धान, कुम्हाड़े।।

सूरदास के कृष्णलीला-गान में गोप-ग्वालों के साथ गाएँ भी सहज रूप में उपस्थित हैं। गोचारण सूरकाव्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण संदर्भ है। यहाँ परमब्रह्म श्रीकृष्ण चरवाहे की भूमिका में वर्णित हैं। ग्वालों-चरवाहों के जीवन में गाय का क्या महत्व होता है, सूरदास इससे भलीभाँति परिचित हैं। गायों के स्वभाव तथा उनके विविध प्रकारों से सूरकाव्य भरा पड़ा है :

आजु चरावन गाइ चलौ जू, कान्ह कुमुद घन जैऐ।

सीतन कुंज कदम की छहियां, छाक छहूँ रस खैऐ।

अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब आनि करौ इक ठौरी।

धौरी, धूमरि, राती, रौंछी, बोलि बुलाइ चिन्हौरी।।

सूरकाव्य में ब्रज की संस्कृति का आकर्षण असीम है। मथुरा का राजसी जीवन भी कृष्ण को फीका लगता है क्योंकि ब्रज का लोक जीवन उनके अंतर्मन से निकलता ही नहीं है। यमुना तट पर सखाओं के साथ खेलने तथा छककर माखन खाने आदि की स्मृतियाँ उनकी आँखों में आँसू भर देती हैं। वे सत्यभामा से कहते हैं :

सुनि सतभामा सौंह तिहारी।

जब-जब मोहिं घोष सुधि आवत, नैननि बहत पनारी।।

वे जमुना वे सखा हमारे, नित नव केलि बिहारी।

वृंदावन की गुल्मलता हैं, मन मधुकर की प्यारी।।

ब्रज की मोहक प्रकृति और संस्कृति सूरदास के हृदय में गहरे बैठी हैं। यही कारण है कि उनके काव्य में लोक जीवन की बड़ी ही धारदार अभिव्यक्ति मिलती है। सूर की कविता में पशुपालन, गोचारण, यमुना-तट-विहार, माखनलीला आदि प्रसंग किसान-चरवाहा संस्कृति का एक संपूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं।

मध्यकालीन सामंती व्यवस्था का शिकार सूर का समाज भी रहा है। सूदखोरों द्वारा असहाय ग्रामीणों पर किए जा रहे अन्याय-अत्याचार का उल्लेख सूरदास ने इस पद में इस प्रकार किया है :

इक कौ आनि ठेलत पाँच!

करुनामय कित जाऊँ कृपानिधि, बहुत नचायो नाच।।

सबै कूर मोसो ऋण चाहत, कहौ कहा तिन दीजै।

बिना दियै दुख देत दयानिधि, कहो कौन बिधि कीजै।।

...

मन राखै तुम्हरे चरननि पै, नित नित जो दुख पावै।

मुकरि जाम कै दीन बचन सुनि, जमपुर बाँधि पठावै।

अर्थात (हमसे) बलपूर्वक एक के बदले पाँच वसूला जाता है। हे करुणा और कृपा के सागर! सबने मुझे बहुत त्रस्त किया हुआ है। मैं अब कहाँ जाऊँ? सभी क्रूरतापूर्वक मुझसे ऋण वसूलना चाहते हैं। आप ही बताइए मैं कहाँ से ऋण चुकाऊँ। हे दयानिधि प्रभु! बिना चुकाए अनेक प्रकार की यातनाएँ मिलती है। आप ही बताइए मैं क्या उपाय करूँ। नित्य दुखों से संतप्त मन को मैंने आपके चरणों में समर्पित कर रखा है। जब कोई दीन असहाय ऋण नहीं चुका पाता तो उसे बाँधकर मौत के मुहँ में डाल दिया जाता है।

ऋण लेने वाला यदि मुकर जाता था तो उसकी क्या दशा की जाती थी इसका उल्लेख करना सूरदास नहीं भूले हैं। उनकी कविता में तत्कालीन समाज की एक-एक सच्चाई को सहज अभिव्यक्ति मिली है।

सूरदास के काव्य में वर्णित कृष्णलीला की अधिकांश पृष्ठभूमि ब्रज के ग्रामीण अंचल की है। इसलिए वहाँ की लोक मान्यताएँ भी उनके काव्य में पर्याप्त स्थान प्राप्त कर सकी हैं। काग का बोलकर उड़ जाना, भुजा पकड़ना, काग का संदेश वाहक होना आदि मान्यताएँ सूर के लोक-अनुभव से उनके काव्य में आई हैं। सूरदास की कविता में मानव जीवन के अनेक पारंपरिक संस्कारों को भी अभिव्यक्ति मिली है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर हर्षित-आनंदित ब्रज समाज का उत्सव देखने योग्य है। जन्म के उपरांत नार-छेदन का प्रसंग आया है, जिसमें दाई यशोदा से पुत्र-जन्म का नेग माँगती है। वह सोने का हार लिए बिना नार नहीं काटेगी :

जसूदा नार न छेदन दैहौं।

मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, यहै आजु हौं लैहौं।।

इसके उपरांत शिशु के नामकरण, अन्नप्रासन आदि का वर्णन भी सूरकाव्य में लोक-परंपराओं के पूर्णतः अनुरूप आया है :

आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।

मनि कंचन के थार भराए, भाँति-भाँति के बासन।।

ये संस्कार कृष्ण के संदर्भ में भले ही राजसी लग रह हों, ब्रज के साधारण समाज में भी इनका यथा सामर्थ्य आयोजन होता था। सूरदास ने इन संस्कारों की सूचना मात्र न देकर इनका विस्तार से वर्णन किया है।

ब्रज के लोक जीवन में मनाए जाने वाले तीज-त्योहारों और उत्सवों की झाँकी भी सूर के काव्य की एक अप्रतिम विशेषता है। 'सूरसागर' में वर्णित फाग के कुछ दृश्य यहाँ प्रस्तुत हैं :

(i) वृंदावन खेलत हरि होरी।

बाजत ताल मृदंगा, झाँझ डफ, नंदलला वृषभानु किसोरी।।

(ii) हरि संग खेलत हैं सब फाग।

इहि मिस, करत प्रगट गोपी, उर अंतर को अनुराग।।

इस प्रकार सूर के काव्य में फाग आदि त्योहारों के वर्णन की बहुलता है। यहाँ उनके पद लोकगीतों से मिलकर एकाकार हो गए हैं। ये पद पारंपरिक लोकगीतों का अनुसरण जान पड़ते हैं।

सूरदास के काव्य में मध्यवर्गीय परिवार और उसका गृहस्थ जीवन केंद्र में है। वे सही अर्थों में गृहस्थ मानस के कवि हैं। कृष्णलीला का पूरा विधान ब्रज के लोक जीवन की निधि है। सूर के काव्य में ब्रज का ग्रामीण अंचल कभी आँखों से ओझल नहीं हुआ है। लोक जीवन से ली गई शब्दावली, वार्तालाप-शैली, लोकोक्ति-मुहावरे, बिंब, प्रतीक आदि से सूर का काव्य लोक काव्य बन पड़ा है। समग्रतः सूरदास का काव्य पूर्णतः लोक जीवन से उपजा काव्य है। ब्रज के धर्म, दर्शन, कला, साहित्य और भाषा का लोकव्यापी रूप सूर के काव्य में मिलता है।

5.7 सूरदास की भाषा और काव्य सौंदर्य

भाव-सौंदर्य :

सूरदास में जितनी सहृदयता या भावुकता थी उतनी ही वाग्विदग्धता भी थी। चूँकि सहृदयता का संबंध कवि के भाव पक्ष से होता है और वाग्वैदग्ध्य का संबंध उसके अभिव्यक्ति पक्ष से होता है। इसलिए भक्त कवि सूरदास की कविता में भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों का सौंदर्य उत्कृष्ट है। सूरदास को मानव-मन के सूक्ष्म भावों की न केवल गहरी परख थी, अपितु उन्हें कलात्मक रूप से व्यक्त करने में भी महारत हासिल थी। उनके भाव पक्ष के अंतर्गत मुख्यतः वात्सल्य, शृंगार और भक्ति का वर्णन आता है। वस्तुतः उनकी भक्ति की विस्तृत परिधि में ही वात्सल्य और शृंगार वर्णन आते हैं। इन दोनों ही क्षेत्रों में सूरदास सिद्धहस्त थे।

सूरदास ने श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन-क्रम में सर्वप्रथम उनके जन्म तथा उसके पश्चात उनके रूप का वर्णन किया है। कृष्ण जन्म की बधाई से लेकर उनके पालने में झूलने तक के अनेक प्रसंगों को सूर ने अपने काव्य में बड़ी सजगता और जीवंतता से अंकित किया है। माँ यशोदा द्वारा शिशु कृष्ण को पालने में झुलाने का यह दृश्य अनुपम सौंदर्य से युक्त है :

यशोदा हरि पालने झुलावै।

हलरावै दुलरावै, मल्हावै, जोई-सोई कछु गावै।।

मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहें न आनि सुवावै।

तू काहैं नहिं बेगहिं आवै तोको कान्ह बुलावै।।

इस पद में सूरदास का वात्सल्य-सौंदर्य अद्‌भुत है। माँ यहाँ अपने छोटे से शिशु को पालने में सुलाने का यत्न कर रही है। वह लोरी की मधुर धुन सुनाकर निंदिया को बुलाती है। उसके शीघ्र न आने पर उससे सवाल भी करती है। सूरदास इस अनूठे दृश्य को अपनी कल्पना में सँजोते हैं और उसे शब्द देते हैं। उन्हें आश्चर्य है कि जो सुख बड़े-बड़े ऋषियों-देवों को भी उपलब्ध नहीं है वह यहाँ माँ यशोदा को सहज में प्राप्त हो गया है। सूरदास के वात्सल्य वर्णन के पीछे जो सबसे बड़ी उनकी ताकत काम कर रही थी, वह थी उनके द्वारा मातृहृदय के भीतर की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं की मनोवैज्ञानिक पहचान। माँ यशोदा की छोटी-बड़ी प्रत्येक अभिलाषा की खबर उन्हें है :

जसुमति मन अभिलाष करैं।

कब मेरो लाल घुटुरूवनि रेंगैं, कब धरनी पद द्वैक धरैं।।

माँ की इन्हीं अभिलाषाओं के बीच धीरे-धीरे कृष्ण बड़े होते हैं, घुटनों के सहारे चलते हैं, आँगन में पड़ रही अपनी ही परछाईं को पकड़ना चाहते हैं। अभिलाषा बढ़ते हुए बालकों में भी प्रबल होती है। सूरदास बाल मनोविज्ञान में पारंगत हैं। उनके कृष्ण माँ यशोदा से प्रश्न करने लगते हैं, 'मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी।' सूरदास बालहठ से भी पूरी तरह परिचित हैं। वे जानते हैं कि बालकों के हठ के समक्ष सभी तर्क और युक्तियाँ व्यर्थ होती हैं। बालक अपनी

बात मनवाने के लिए बड़ों को धमकाना भी जानते हैं, 'मैया मैं तो चंद खिलौना लैहों। जैहों लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहों।' जब अपनी चोरी पकड़ी जाती है तो आरोप दूसरों पर मढ़ देना बाल-स्वभाव ही होता है, 'मैया मैं नहिं माखन खायो। ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायो।' सखाओं के चिढ़ाने पर माँ से शिकायत करना बालकों का नित्य स्वभाव होता है। सूरदास इसे चित्रित करना कैसे भूल सकते थे, 'मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।'

कृष्ण के मथुरा-गमन-प्रसंग में वात्सल्य के वियोग पक्ष की भी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। कृष्ण-वियोग में व्याकुल माँ यशोदा की व्यथा सूरकाव्य में जगह-जगह फूट पड़ी है। यशोदा कृष्ण की स्मृतियों में विह्वल होती हैं– 'है कोऊ ऐसी भाँति दिखावै। किंकिन सब्द चलति धुनि, रूनझुन ठुमुकि गृह आवै।' पुत्र चिंता जब असह्य हो जाती है तो वे उद्धव से देवकी को संदेश भी भेजती हैं, 'संदेसौं देवकी सो कहियो। वे केवल पुत्र कृष्ण का सान्निध्य चाहती हैं, इसके लिए वे वसुदेव की दासी तक बनने को तैयार हैं।

वृंदावन की उन्मुक्त प्रकृति के मध्य सखाओं और गायों के साथ विचरण करते कृष्ण की लीलाओं का वर्णन सूरदास का प्रिय विषय रहा है। गोचारण-प्रसंग के अनेक मनोहारी दृश्यों का अंकन सूर ने अपने काव्य में किया है। दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैः

(i) मैया री मोहिं दाऊ टेरत।

मोको बनफल तोरि देत हैं, आपुन गैयन घेरत।।

(ii) मैया हौं न चरैहो गाय।

सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पांय पिराय।।

सूरदास का शृंगार-वर्णन उनके भावपक्ष का अभिन्न अंग है। महत्वपूर्ण बात यह है कि सूरकाव्य के शृंगार के अंतर्गत आया हुआ प्रेम अचानक उपजा हुआ प्रेम नहीं है। इस मनोवृत्ति का क्रमशः विकास हुआ है। राधा और कृष्ण का प्रेम किशोर वय का प्रेम है। दोनों के बीच का यह आकर्षण दीर्घ साहचर्य का भी परिणाम है। राधा-कृष्ण के प्रथम मिलन का दृश्य प्रस्तुत करने में सूरदास ने अपनी उत्कृष्ट कलात्मकता का परिचय दिया है :

खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।

औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।।

सूर स्याम देखत ही रीझै, नैन नैन मिलि परी ठगोरी।।

ब्रज की गलियों में चुहलबाजी, छेड़छाड, गोदोहन में राधा-कृष्ण की पारस्परिक नोक-झोक आदि क्रिया व्यापार यहाँ इतने स्वाभाविक और जीवंत हैं कि पाठक इन पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहता।

सूरदास ने जितनी दक्षता और प्रौढ़ता का परिचय संयोग-शृंगार के वर्णन में दिया है उतना ही वियोग-शृंगार के वर्णन में। विस्तार और गंभीरता वियोग वर्णन में भी उसी प्रकार की है। सूरकाव्य में वियोग वर्णन का आरंभ वात्सल्य-वियोग से हुआ है। कृष्ण-वियोग का दुख माँ यशोदा को इतना है कि वे नंद से लड़ने-झगड़ने लगती हैं। सूर ने परिस्थितिजन्य इस क्षोभ की बड़ी ही मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति की है। यशोदा कहती हैं, 'फाटि न गयी ब्रज की छाती कत यह सूल सह्यो।'

इस प्रकार वात्सल्य वियोग से आरंभ होकर सूर का वियोग वर्णन गोपियों के वियोग पर केंद्रित होता है। सूर ने यहाँ परंपरागत विरह दशाओं का चित्र तो प्रस्तुत किया ही है, अपनी नवीन दृष्टि का भी परिचय दिया है। ब्रज का कोना-कोना कृष्ण के विरह में दग्ध दिखाई पड़ता है। संयोग काल में सुख और शीतलता प्रदान करने वाली प्रकृति वियोग में आग उगलने वाली प्रतीत होती है। अपनी विरह-व्यथा को कृष्ण तक पहुँचाने की कामना से एक गोपी उद्धव से कहती है, 'बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।' विरह कातर गोपियाँ हरे भरे मधुबन को भी कोस डालती हैं, 'मधुबन तुम कत रहत हरे।' कृष्ण का वियोग केवल गोपियों को ही व्यथित नहीं करता, ब्रज की प्रकृति भी इस दुख में बराबर की साझीदार बन पड़ी है। गोपियाँ यमुना की विरह-दशा को उद्धव से कहती हैं, 'देखियत कालिंदी अति कारी। कहियो पथिक जाय उन हरि सों, भई विरह जुर जारी।।'

इस प्रकार सूरदास के काव्य का संवेदना पक्ष अत्यंत व्यापक तथा समृद्ध है। संवेदना के सभी उपादान बहुत की कुशलता से नियोजित किए गए हैं।

सूरदास की काव्यभाषा (शिल्प-सौंदर्य)

सूरदास के काव्य में ब्रज-प्रदेश की लोक प्रचलित भाषा अपने विविध गुणों के साथ उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है। मध्यकालीन सामंती समाज-व्यवस्था में भाषा-व्यवहार की दृष्टि से समाज दो वर्गों में विभक्त था। समाज का अभिजात वर्ग संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में रचित साहित्य का रसास्वादन करता था, जबकि सामान्य जनता की समझ से ये भाषाएँ बहुत दूर थीं। भक्ति-आंदोलन की एक बड़ी उपलब्धि भाषा के स्तर पर भी थी। लोकभाषा को साहित्य-सृजन की भाषा बनाने में इस आंदोलन ने बड़ी भूमिका निभाई। सूरदास इसी आंदोलन की

उपज हैं, जिन्होंने लोक व्यवहृत ब्रजभाषा में साहित्य-सृजन की एक नई परंपरा की शुरूआत की। ब्रजभाषा-साहित्य की यह परंपरा आगामी चार सौ साल तक अबाध गति से चलती रही। सूरदास की काव्यभाषा लोक-व्यवहार की भाषा है। इसलिए उसमें सामाजिक जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने की अपूर्व क्षमता है।

सूरदास के काव्य में प्रयुक्त ब्रजभाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी कोमलता है। भाषा और भावों का ऐसा कोमल संबंध सूरदास के शब्द-चयन और सटीक प्रयोग के कारण हो सका है। 'सूरसागर' के पदों में यह भाषागत कोमलता सर्वत्र देखी जा सकती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

मोहन हौं तुम ऊपर वारी।

कंठ लगाई लिए, मुख चूमति, सुंदर स्याम बिहारी।।

सूर की काव्यभाषा की एक अन्य विशेषता है– गुणानुकूल शब्द-योजना की। उन्होंने अपनी भाषा में भावों के अनुकूल ओज, माधुर्य और प्रसाद– तीनों गुणों का निर्वाह किया है। अपने कोमल शब्द-चयन के द्वारा भी ओज की अभिव्यक्ति सूर जैसे समर्थ कवि द्वारा ही संभव थी :

जा जा रे भौंरा दूर दूर।

रंग रूप औ एकहि मूरति मेरो मन किया चूर चूर।।

सूरदास ने भ्रमरगीत-प्रसंग में जहाँ दार्शनिक विचार व्यक्त किए हैं अथवा कृष्ण के सौंदर्य पर पद-रचना की है वहाँ संस्कृत की तत्सम शब्दावली का सफल प्रयोग उन्होंने किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :

नैननि नंद नंदन ध्यान।

पानि पल्लव रेख गनि गुन अवधि विविध विधान।।

चंद कोटि प्रकास मुख अवतंस कोटिक भान।

कोटि मन्मथ वारि छवि पर निरखि दीजत ध्यान।।

सूरदास ने अपने काव्य में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अरबी-फरसी को भी अत्यंत कुशलता से अपनाया है। तरवारि, हद, गुमान, दगा, दीवान, मेहमान, दस्तक, फौज जैसे सैकड़ों शब्द सूरकाव्य में स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त मिलते हैं। लोकोक्तियों-मुहावरों के प्रयोग ने सूरदास की भाषा को एक विशिष्ट धार दी है। भ्रमरगीत-प्रसंग में तो इन मुहावरों की बाढ़-सी है। कहावतों-मुहावरों पर सूर ने अपनी भाषा की लाक्षणिक कोमलता का अद्‌भुत कलेवर चढ़ा दिया है।

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(i) कहु षट्‌पद कैसे खैयतु है, हाथिन के संग गांडे।

काकी भूख गई बयारि भखि, बिना दूध घृत माँड़ें।।

सूरदास तीनों नहिं उपजत, धनिया, धान कुम्हाड़े।।

(ii) वरू वै कुब्जा भलो कियो।

सुनि सुनि समाचार ऊधो मो, कछुक सिरात हियो।।

(iii) तुम सों प्रेम कथा का कहिबो, मनहु काटिबो घास।।

सूरदास की काव्य भाषा की एक बड़ी विशेषता उनकी वाग्विदग्धता है। 'भ्रमरगीत' में गोपियों की उक्तियाँ आद्योपांत वाक्चार्तुय और वाग्वैदग्ध्य से भरी हुई है। उनमें से एक गोपी व्यंग्य में उद्धव से जो कहती है उसमें कृष्ण के अंग-प्रत्यंग के लिए बहुत ही सटीक उपमाएँ दी गई हैं :

ऊधो अब हम समुझि भई।

नंदनंदन के अंग अंग प्रति, उपमा न्याय दई।।

कुंतल कुटिल भंवर भामिनि वर मालति मुरै लई

लजत न गहरू कियौ तिन कपटी जानी निरस भई।।

यहाँ कृष्ण के घुंघराले केश कपटी भ्रमर की भाँति हैं। भौंरा पहले तो मालती पर आकृष्ट होकर उसे फुसला लेता है तत्पश्चात् उसका रस चूसकर उसे त्याग देता है। सूरदास की वाग्विदग्धता के कुछ और उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

(i) निरगुन कौन देस को वासी।

मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, वूझत साँच न हाँसी।।

(ii) इहिं उर माखन चोर गड़े।

अब कैसेहुँ निकस नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े।।

इस प्रकार 'भ्रमरगीत' में गोपियों का एक-एक कथन सूर की वाक्-चातुरी और भाषा वैदिगध्य का प्रामाणिक उदाहरण है। यहाँ गोपियाँ कभी निर्गुण योग साधना के व्यावहारिक पक्ष की जटिलताओं पर प्रहार करती हैं, वो कभी सहज-सरल सगुण प्रेम की वकालत करती दिखाई पड़ती हैं।

सूरदास का काव्य अलंकारों का महासागर है। इसमें भी सबसे बड़ी बात यह है कि अलंकार यहाँ लाए नहीं गए हैं, अपितु सूर की भावाभिव्यक्ति में सहायक होने पर स्वतः ही आ गए हैं। भाव-विभोर होकर सूरदास जो कुछ भी कहते हैं, अलंकारों की वहाँ झड़ी सी लग जाती है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा सूरदास के प्रिय अलंकार हैं। रूपकातिशयोक्ति अलंकार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें उपमानों के द्वारा राधा के नख-शिख-सौंदर्य का सुंदर वर्णन है :

अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल-कमल पर गजवर क्रीड़त, ता पर सिंह करत अनुराग।
रूचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता अमृत फल लाग।।

वस्तुतः सूर की काव्यभाषा रूपक प्रधान भाषा है। यहाँ रूपक मात्र अलंकार नहीं है बल्कि लाक्षणिकता का सारा सौंदर्य उन्हीं पर निर्भर है। उनकी प्रतीक-योजना का उत्कृष्ट रूप 'भ्रमरगीत' में दिखाई पड़ता है। चित्रात्मकता तथा बिंब-विधान सूर की काव्यभाषा के अंगभूत तत्व हैं। उनका 'सूरसागर' रूप-रस-गंध-स्पर्श के बिंबों का विपुल कोश है।

बोध प्रश्न

9. सूर के काव्य में ब्रज का लोक जीवन किन रूपों में आया है? सोदाहरण उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10. सूरदास की काव्यभाषा की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.8 सूर के काव्य का वाचन और आस्वादन

काव्य का वाचन

देखिए– परिशिष्ट।

काव्य का आस्वादन

- **जापर दीनानाथ ढरै। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित है, जो 'सूरसागर' के 'विनय के पद' से उद्धृत है। सूरदास कृष्ण के सगुण रूप के अनन्य उपासक हैं। उनके उपास्य श्रीकृष्ण दीन-दुखियों की सहायता करने वाले हैं। जिस पर उनकी कृपा-दृष्टि पड़ती है वही सुंदर और श्रेष्ठ हो जाता है। ऐसे ही दयालु और भक्त वत्सल प्रभु की उदारता का वर्णन कवि ने प्रस्तुत पद में किया है।

व्याख्या

जिस पर भी दीन-दुखियों के स्वामी श्रीकृष्ण कृपा कर देते हैं वही उच्च कुलवाला, महान और सुंदर हो जाता है। विभीषण कौन था? वह बेचारा राक्षस ही तो था तब भी श्रीहरि ने हँसते-हँसते उसके शीश पर लंका का राजछत्र रख दिया। रावण से अधिक बलशाली राजा कौन था? वह भी अपने अहंकार में ही पड़कर नष्ट हो गया। ब्राह्मण सुदामा से अधिक विपन्न कौन था? उन पर भी प्रभु ने कृपा करके अपने ही समान संपन्न बना दिया। अजामिल से बड़ा पापी भला कौन होगा। उस पर भी प्रभु की कृपा हुई जिसके पश्चात यमराज भी

समीप जाने से भयभीत हो गया था। देवर्षि नारद से बड़ा वैरागी कौन होगा तो भी उन्हें रात-दिन भटकना पड़ा था। भगवान शंकर से बड़ा योगी कौन है? उन्हें भी कामदेव ने छल लिया था। दासी कुब्जा से अधिक कुरूप कौन स्त्री होगी, वह भी श्रीहरि को पतिरूप में प्राप्त कर भवसागर से पार हो गई। सीता से अधिक सुंदर स्त्री कौन होगी? फिर भी उन्हें जीवन भर पति-वियोग का दुख सहना पड़ा। प्रभु की इस रहस्यमय लीला को कोई नहीं जानता कि किस भाव से वे प्रसन्न होकर भक्तों पर अपनी कृपा कर दें। भक्त सूरदास कहते हैं कि प्रभु के भजन के बिना जीव बार-बार गर्भस्थ होता है उसे जठर (उदर) की आग में जलना पड़ता है।

विशेष

(i) प्रस्तुत पद में विभिन्न पौराणिक कथाओं और उनके पात्रों के संदर्भ भाव-सौंदर्य में वृद्धि करते हैं।

(ii) प्रभु के अनुग्रह या कृपादृष्टि पर केंद्रित भक्ति ही पुष्टिमार्गीय भक्ति है, जो भक्त कवि सूरदास का अभीष्ट है।

(iii) सुंदर सोइ, हरि हँसि, आदि में अनुप्रास अलंकार की सुंदर योजना है।

- **किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित है जो 'सूरसागर' के बाललीला से लिया गया है। बालक कृष्ण अपने आँगन में घुटनों के बल चलते हुए अनेक बालसुलभ क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। माता

यशोदा उनकी विभिन्न मोहक छवियों को देखकर मुग्ध हो जाती हैं। वे नंद को भी यह दृश्य दिखाना चाहती हैं। इसी मनोहर सौंदर्य का वर्णन सूरदास ने प्रस्तुत पद में किया है।

व्याख्या

किलकारी मारते हुए बालक कृष्ण घुटनों के बल चलकर आ रहे हैं। नंद के भवन का आँगन मणियों और सोने से जड़ा हुआ है, जिसमें बालक कृष्ण अपनी ही परछाई को पकड़ने के लिए दौड़ रहे हैं। कभी कृष्ण अपनी छाया को देखकर उसे अपने हाथों से पकड़ना चाहते हैं। इस क्रिया में जब वे किलकारी मारकर हँसते हैं तो उनके दूध के दोनों दाँतों की शोभा दिखाई पड़ती है। वे बार-बार इसी क्रिया को दोहराते हैं। आँगन की स्वर्णभूमि पर चलते हुए कृष्ण के हाथ-पैरों की परछाईं को देखकर यही एक उपमा उचित प्रतीत होती है कि पृथ्वी मानों प्रत्येक पग और प्रत्येक मणि में कमल प्रकट करके उनके लिए आसन सजा रही हो। बालकृष्ण की इस सुखद छवि को देख माँ यशोदा बार-बार नंद को बुलाती हैं। सूरदास कहते हैं कि अतिशय ममत्व तथा भावी अनिष्ट के भय से माँ यशोदा बालक कृष्ण को आँचल से ढककर दूध पिलाने लगती हैं।

विशेष

(i) यह पद सूरदास के वात्सल्य-वर्णन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(ii) प्रस्तुत पद में घुटनों के बल चलने वाले बालकृष्ण की बाल मनोवृत्ति तथा यशोदा के मातृहृदय का स्वाभाविक व मनोवैज्ञानिक अंकन हुआ है।

(iii) प्रस्तुत पद सूरदास की सूक्ष्म दृष्टि का बेजोड़ उदाहरण है जो उनके जन्मांध होने पर संदेह उत्पन्न करता है।

(iv) 'अँचरा तर...' पंक्ति में ब्रज की पारंपरिक ग्रामीण संस्कृति की झलक द्रष्टव्य है।

(v) 'किलकत कान्ह' में अनुप्रास अलंकार है और 'कनक भूमि...' में उत्प्रेक्षा तथा उपमा।

- **मैया बहुत बुरो बलदाऊ। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित है जो 'सूरसागर' के दशम स्कंध में वर्णित बाललीला से लिया गया है। बालसुलभ प्रकृति के अनुरूप खेल-खेल में बलराम चिढ़ाने और डराने का प्रयास करते हैं, जिसकी शिकायत कृष्ण माँ यशोदा से करते हैं। कृष्ण की यह बाललीला सूरदास का अत्यंत प्रिय वर्ण्य-विषय है। प्रस्तुत पद में उन्होंने इसका बहुत सुंदर वर्णन किया है।

व्याख्या

कृष्ण कहते हैं– हे माता ! बलराम जी बहुत बुरे हैं। कहने लगे कि वन में एक बहुत बड़ा तमाशा हो रहा है। सभी बालक देखने के लिए एक साथ चलो। वे मुझे भी बहला पुचकार कर वहाँ ले गए जहाँ झाड़ियों का घना वन था। फिर वहाँ से यह कहकर भाग गए कि यहाँ तो हाऊ (हौवा) है जो काट खाएगा। यह सुनते ही मैं डर गया, काँपने और रोने लगा। वहाँ कोई मुझे धीरज बँधाने वाला नहीं था। अत्यधिक भय से मैं भाग भी नहीं पा रहा था, जबकि वे सभी आगे-आगे भाग रहे थे। बलराम जी मुझसे यह भी कहते हैं कि तुम्हें तो मोल लेकर

(खरीद कर) यहाँ लाया गया है और वे स्वयं को श्रेष्ठ कहलवाते हैं। सूरदास कहते हैं कि बालकृष्ण की बातें सुनकर माता यशोदा कहने लगीं कि बलराम तो बड़ा झूठा है और उसे वैसे ही सखा मिल गए हैं।

विशेष

(i) खेल-खेल में बालक एक दूसरे को चिढ़ाते और डराते हुए एक विशेष प्रकार का सुख प्राप्त करते हैं। सूरदास को बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ है। उन्होंने इस मोहक प्रसंग का अत्यंत सुंदर अंकन प्रस्तुत पद में किया है।

(ii) हाऊ शब्द का प्रयोग आज भी लोक में 'हौवा' के रूप में प्रचलित है जिसका संबंध उस अस्तित्वहीन वस्तु से है जिससे भय लगता है।

(iii) ब्रजभाषा की लोकप्रचलित शब्दावली का सुंदर प्रयोग हुआ है।

- **इहिं उर माखन चोर गड़े । ....**

संदर्भ

प्रस्तुत पद भक्त कवि सूरदास द्वारा रचित है, जो 'सूरसागर' के भ्रमरगीत से लिया गया है। ब्रज की गोपियाँ अनन्य भाव से कृष्ण से (सगुण रूप से) प्रेम करती हैं। उद्धव गोपियों को अपने अंतर्मन में निगुर्ण ब्रह्म की स्थापना करने का उपदेश देते हैं। गोपियाँ अपनी विवशता व्यक्त करने के लिए तर्क का आश्रय लेती हैं। एक गोपी उद्धव से कहती है कि उसके हृदय में तो कृष्ण का सगुण साकार रूप बसा है, इसमें निर्गुण कैसे समा सकता है।

व्याख्या

इस हृदय में तो माखनचोर कृष्ण भीतर तक गड़े हुए हैं। हे उद्धव! वे अपनी त्रिभंगी के रूप में तिरछे होकर जिस प्रकार अड़े हुए हैं, अब किसी भी प्रकार से निकल नहीं पाते। यद्यपि कृष्ण अहीर हैं और यशोदा के पुत्र हैं, फिर भी वे मुझसे छोड़े नहीं जाते। मथुरा जाकर वे भले ही श्रेष्ठ कुल वाले यदुवंशी बन गए हों, हमें तो वे तनिक भी बड़े प्रतीत नहीं होते। वसुदेव और देवकी कौन हैं, इनको न तो हम जानती हैं और न ही इनके विषय में कुछ समझना चाहती हैं। नंदनंदन श्रीकृष्ण को देखने के बाद हमें कोई और नहीं सूझता।

विशेष

(i) प्रस्तुत पद में गोपियों की भावुकता के साथ वाक्पटुता का सुंदर वर्णन हुआ है।

(ii) ज्ञान और योग पर भक्ति और प्रेम की प्रतिष्ठा सूरदास का मुख्य उद्देश्य है, जो गोपियों के माध्यम से यहाँ सशक्त रूप में स्पष्ट देखी जा सकती है।

(iii) प्रेम में ऊँच-नीच और छोटे-बड़े की विषमता समाप्त हो जाती है इसीलिए गोपियों को मथुरा वाले कृष्ण बड़े प्रतीत नहीं होते।

- **काहे कौं रोकत मारग सूघो। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत पद भक्त कवि सूरदास द्वारा रचित है, जो 'सूरसागर' के भ्रमरगीत से लिया गया है। उद्धव जब गोपियों से बार-बार कृष्ण के सगुण रूप को छोड़कर निर्गुण ब्रह्म को अपनाने की

सीख देते हैं तो यह सुनकर गोपियाँ खीझ उठती हैं। उन्हें कृष्ण के साथ किए गए प्रेम का मार्ग सीधा और सरल प्रतीत होता है। उद्धव के साथ-साथ अन्य मथुरावासियों पर भी उनकी खीझ और झुंझलाहट प्रकट होती है।

व्याख्या

तुम हमें प्रेम के सीधे मार्ग पर चलने से क्यों रोकते हो? हे उद्धव सुनो! तुम निर्गुण प्रेम के काँटों से कृष्ण-प्रेम के राजपथ को क्यों अवरूद्ध कर रहे हो। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि या तो तुम कुब्जा द्वारा सिखा-पढ़ाकर भेजे गए हो या हसमे छुटकारा पाने के लिए कृष्ण ने स्वयं तुम्हें यहाँ भेजा है। वेद, पुराण और स्मृतियों में सर्वत्र ढूँढ़ कर देख लो। क्या कहीं स्त्रियों के लिए यौग का विधान किया गया है? उस व्यक्ति की बात का क्या विश्वास किया जाए, जो छाछ और दूध में अंतर करना ही न जानता हो। सच्चाई तो यह है कि श्रीकृष्ण के रूप में मूलधन तो अक्रूर पहले ही ले जा चुके हैं, और अब ब्याज वसूलने के लिए (उनकी छवि भी हृदय से निकालकर ने जाने के लिए) यहाँ उद्धव आए हैं।

विशेष

(i) सूरदास की गोपियों में प्रेमजन्य ईर्ष्या, मान, तार्किकता और वाक् कौशल– इन सबकी सफल अभिव्यक्ति प्रस्तुत पद में हुई है।

(ii) कवि द्वारा निर्गुण मार्ग की अपेक्षा सगुण मार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध करने का सुंदर और तार्किक ढंग से प्रयास किया गया है। 'दूध और छाछ' तथा 'कंटक और राजपंथ' आदि शब्दों के माध्यम से यह अंतर स्पष्ट हो जाता है।

- **चलत देखि जसुमति सुख पावै। ...**

व्याख्या

बालक कृष्ण अब इतने बड़े हो गए हैं कि वे खुद से चलने लगे हैं। कृष्ण को चलते देख यशोदा को सुख की अनुभूति होती है। वे (कृष्ण) धरती पर ठुमक-ठुमक कर अपना पैर रखते हैं तथा माँ को देखकर उसे अपना चलना दिखाते हैं। वे घर की दहलीज तक चले जाते हैं और फिर लौटकर वहीं वापस आ जाते हैं जहाँ से चले थे। बालक कृष्ण ने चलना तो शुरू कर दिया है पर दहलीज लाँघ नहीं पाते। दहलीज को लाँघने के प्रयास में बार-बार गिर पड़ते हैं। बालक कृष्ण अपनी इस लीला से देवताओं और मुनिओं को आश्चर्य में (सोच करावै) डालते हैं। जो प्रभु पल भर में करोड़ों बह्मांड का निर्माण कर सकते हैं; उसका नाश करने में भी उन्हें तनिक देर नहीं लगती उसे नंद की रानी तरह-तरह का खेल खिला रही हैं। बालक कृष्ण दहलीज लाँघने के प्रयास में बार-बार गिरता देख माँ यशोदा उनका हाथ पकड़कर क्रमशः दहलीज पर चढ़ाकर फिर उतारती हैं। सूरदास कहते हैं कि प्रभु की इस लीला को देखकर देवता, मनुष्य अपनी बुद्धि भुला देते हैं।

- **मधुकर हमहीं क्यौं समुझावत। ...**

व्याख्या

कृष्ण के विरह में डूबी गोपियों को उद्धव निर्गुण ब्रह्म और गीता का ज्ञान देने का प्रयास करते हैं। गोपियों को यह नहीं रुचता। उसी समय वहाँ उड़कर आए भँवरे को संबोधित करते हुए गोपियाँ उद्धव पर खीझते हुए कहती हैं कि तुम हमें क्यों समझा रहे हो? हम अबलाओं

के समक्ष बार-बार गीता का ज्ञान क्यों गा रहे हो? कृष्ण के बिना हमें तुम्हारी कपटपूर्ण कथा में कोई रुचि नहीं है। हमारे विरह की अग्नि को मिटाने के लिए कृष्ण रूपी चंदन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त कोई और सत्य (ज्ञान) हमारे काम का नहीं है। आगे गोपियाँ एक साथ उद्धव और भँवरे दोनों को संबोधित करती हैं कि तुम तो चतुर कहलाते हो तो अपने मन में विचार कर बताओ कि सब फूलों पर घूम-घूम कर, उन्हें निरस कर कमल से क्यों बँध जाते हो? उसी प्रकार हमारे मन में भी वही (कृष्ण) बसते हैं जिनका चरण कमल के समान है; जिनके हाथ, आँख, बदन कमल के समान सुंदर हैं। सूरदास गोपियों की पीड़ा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हमारा मन भी भौंरे के समान अनुरागी है वह कृष्ण के बिना कैसे सुख पाएगा?

- **अखियाँ हरि दरसन की प्यासी। ...**

व्याख्या

गोपियाँ कहती हैं कि हमारी आँखे हरि दर्शन की प्यासी हैं। यह कमल के समान नेत्र वाले अर्थात कृष्ण को देखना चाहती हैं तथा उन्हें न देख पाने के कारण दिन-रात उदास रहती हैं। केसर का तिलक लगाए, मोतियों की माला पहले कृष्ण हमारे मन रूपी आँगन में आए थे और फिर चले गए मानो हम वृंदावन-वासियों के गले में फाँसी डाल गए। कोई किसी के मन की बात नहीं जानता, लोग हँसी उड़ाते हैं। सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु, आपके दर्शन के लिए अपनी जान भी दे दूँगा।

- **उधौ तुम हौ चतुर सुजान। ...**

व्याख्या

उधो तुम चतुर और ज्ञानी हो। हमें तो वह सीख दो यानी वह उपाय बताओ जिससे कि नंद के पुत्र (कृष्ण) को वापस लाना संभव हो। तुम बताओ जिनका भोजन माँस है वह साग की इज्जत क्यों करेगा? जो मुख पान खाता है उसके आगे सेम का पत्ता परोसने का क्या प्रयोजन है? जिसने मुरली की तान सुनी है वह सारंगी के स्वर को कैसे सच मान लेगा? गोपियाँ कहती हैं कि ब्रज में सुख तो उसी दिन होगा जिस दिन कान्हा यहाँ आएँगे।

- **उधौ कहा कहत बिपरीत। ...**

व्याख्या

हे उधो! उल्टी बात क्यों करते हो? तुम युवतियों को योग की शिक्षा दे रहे हो यह तो रीति के अनुकूल नहीं है। तुम्हारा यह कार्य वैसे ही नीति विरुद्ध है जैसे कोई गाय को हल में जोते और बैल से दूध दुहने का प्रयास करे। चकवा-चकवी को चंद्रमा से क्या मतलब है। (ऐसा माना जाता है कि चकवा-चकवी रात में बिछुड़ जाते हैं।) चकोर को सूर्य से प्रेम कहाँ होता है। अगर पत्थर तैरने लगे और लकड़ी डूब जाए तो हम तुम्हारी नीति को मान लेंगे। सूरदास कहते हैं कि श्याम के हर अंग के सौंदर्य पर गोपियाँ न्योछावर है

5.9 सारांश

- सूरदास से संबंधित 25 काव्य-कृतियों की चर्चा आलोचकों द्वारा की जाती है, किंतु 'सूरसागर', 'सूर सारावली' और 'साहित्य-लहरी' को ही अधिकांश आलोचक सूरदास

की रचना मानते हैं। इनमें भी 'सूरसागर' की प्रामाणिकता निर्विवाद है जबकि 'सूर-सारावली' और 'साहित्य लहरी' की प्रामाणिकता को लेकर आलोचकों में मतभेद है।

- सूरदास की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है, जो वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत दर्शन पर आधारित है। पुष्टिमार्गीय भक्ति का बीज तत्व 'भगवतानुग्रह' है, जिसमें पूरी भक्ति प्रभु के अनुग्रह पर आश्रित है। ईश्वर-प्राप्ति का कृपा-मार्ग ही पुष्टिमार्ग है।
- सूरदास की भक्ति में जहाँ एक ओर विनय के पद हैं तो दूसरी ओर कृष्णलीला के। कृष्णलीला-वर्णन का पहला चरण वात्सल्य-वर्णन है। कृष्ण की वृंदावन लीला में सूर की सख्य भाव की भक्ति के दर्शन होते हैं। सूरदास की भक्ति का अगला और अंतिम चरण माधुर्य भाव की भक्ति का है। माधुर्य में प्रेम और शृंगार-भाव का समावेश रहता है। गोपियों और कृष्ण तथा राधा और कृष्ण के प्रेम-प्रसंगो में माधुर्य भक्ति की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।
- पुष्टिमार्गीय भक्ति में श्रीकृष्ण के बाल रूप और बाललीलाओं की अधिक महत्ता रही है। वात्सल्य वर्णन में सूरदास विश्व के श्रेष्ठतम कवि माने जाते हैं। वे जितना बाल मनोविज्ञान में पारंगत हैं, उतना ही एक माँ के हृदय की विभिन्न अंतर्दशाओं के मर्मज्ञ।
- सूरदास के काव्य में प्रेमाभक्ति या माधुर्य भक्ति की प्रधानता है। इसके अंतर्गत सूरदास का मुख्य वर्ण्य विषय राधा-कृष्ण तथा गोपी-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग हैं जो पूरी तरह शृंगार भावना पर ही आधारित हैं।
- यहाँ शृंगार के दोनों पक्ष– संयोग और वियोग, काव्यशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक– दोनों ही दृष्टियों से सशक्त हैं। सूरदास के काव्य में प्रेम-शृंगार की अभिव्यक्ति भक्ति

भावना का ही परिपुष्ट रूप है, जहाँ सभी भाव आकर भक्ति के सागर में समाहित हो जाते हैं।

- सूरदास के काव्य में ब्रज का लोक जीवन विस्तृत और वैविध्यपूर्ण रूप में विद्यमान है। कवि द्वारा वर्णित कृष्णलीला की पृष्ठभूमि ब्रज के ग्रामीण अंचल की है, इसलिए सूरकाव्य में वहाँ की लोकमान्यताएँ, लोकभाषा और लोक संस्कृति इस काव्य की आंतरिक पहचान बनकर उभरी हैं। सूरदास का काव्य पूर्णतः लोक जीवन से उपजा काव्य है।
- भक्त कवि सूरदास के काव्य में संवेदना पक्ष और शिल्प पक्ष के सौंदर्य का एक अद्‌भुत संतुलन देखने को मिलता है। सूरदास को मानव-मन के सूक्ष्म भावों की न केवल गहरी परख थी, अपितु उन भावों को कलात्मक रूप से अभिव्यक्त करने में भी महारत हासिल थी। वात्सल्य और शृंगार के जिस धरातल पर सूर ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई वह दूसरों के लिए दुर्गम और दुर्लभ ही रहा। ब्रजभाषा के लोकप्रचलित रूप को सृजन की भाषा बनाकर सूर ने एक नई परंपरा की शुरूआत की।

5.10 शब्दावली

दृष्टकूट – सूरदास रचित वे पद जिसमें अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अर्थ अथवा भाव को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त किया जाता है।

पुष्टिमार्ग – पुष्टिमार्ग में पुष्टि का अर्थ पोषण यानी भगवान की कृपा से है। इस मार्ग का मुख्य लक्ष्य ईश्वर की कृपा प्राप्ति है।

अष्टछाप – वल्लभाचार्य के चार शिष्य तथा विट्ठलनाथ के चार शिष्यों से बना आठ कृष्णभक्तों का समूह।

शुद्धाद्वैत – शुद्धाद्वैत में ब्रह्म को माया के संबंध से रहित माना गया है। जीव और जगत भी ब्रह्म के ही रूप हैं।

विप्रलंभ शृंगार – वियोग की दशा में प्रेम का होना।

भ्रमरगीत – सूरदास आदि कृष्णभक्त कवियों के काव्य में भौंरे को संबोधित करते हुए गोपियों द्वारा की गई अभिव्यक्तियाँ।

नवधा भक्ति – ईश्वर की अराधना के नौ प्रकार बताए गए हैं। इन्हें ही नवधा भक्ति कहा जाता है। ये नौ प्रकार हैं– श्रवण, कीर्तन, अर्चण, स्मरण, पादसेवन, दास्य, वंदन, सख्य और निवेदन।

5.11 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी साहित्य का इतिहास* – रामचंद्र शुक्ल; नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
- *हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास* – हजारीप्रसाद द्विवेदी; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य* – मैनेजर पांडेय; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- *सूरदास* – रामचंद्र शुक्ल; प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
- *भक्तिकाव्य का समाज दर्शन* – प्रेमशंकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) नाभादास

   (ख) सूरदास

   (ग) मियां सिंह

   (घ) ध्रुवदास

   (ङ) डॉ. दीनदयालु गुप्त

2. (क) परिवेश और समाज

   (ख) वल्लभाचार्य

   (ग) गऊघाट

   (घ) दैन्यभाव

3. देखिए– भाग 5.2

4. देखिए– भाग 5.2

5. (क) – ✓

   (ख) – ×

   (ग) – ✓

   (घ) – ✓

   (ङ) – ×

6. देखिए – भाग 5.3

7. देखिए– भाग 5.4

8. देखिए– भाग 5.5

9. देखिए– भाग 5.6

10. देखिए– भाग 5.7

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 तुलसीदास का काव्य

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 तुलसीदास का जीवन और रचना संसार

6.3 तुलसीदास की भक्ति

6.4 तुलसीदास की कविता का सामाजिक-राजनीतिक पक्ष

6.5 तुलसीदास की भाषा और काव्य सौंदर्य

6.6 तुलसीदास की कविता का वाचन और आस्वादन

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 उपयोगी पुस्तकें

6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

तुलसीदास हिंदी सगुण भक्तिकाव्य के अंतर्गत रामभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। रामभक्ति काव्य को देश-विदेश में लोकप्रिय बनाने में उनका अप्रतिम योगदान है। इस इकाई में तुलसीदास के कवि-व्यक्तित्व तथा भक्तिकाव्य में उनके योगदान के विभिन्न पक्षों की जानकारी दी जा रही है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- तुलसीदास के जीवन-वृत्त तथा उनके रचना संसार पर प्रकाश डाल पाएँगे;
- तुलसीदास की भक्ति के वैशिष्ट्य के विभिन्न पक्षों को रेखांकित कर पाएँगे;
- तुलसीदास की कविता में अभिव्यक्त उनके सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण के विभिन्न पक्षों का विवेचन कर सकेंगे;
- उनकी भाषा और काव्य सौंदर्य की विशिष्टता से अवगत होंगे; तथा
- पाठ्यक्रम में निर्धारित तुलसीदास की कविताओं की व्याख्या कर पाएँगे।

6.1 प्रस्तावना

तुलसीदास का आविर्भाव हिंदी भक्तिकाव्य के उत्तरवर्ती दौर में हुआ। तुलसीदास भक्ति आंदोलन के सगुण वैष्णव मत से संबंधित थे, लेकिन उन्होंने अपने आप को वहीं तक सीमित नहीं रखा। इस मायने में तुलसीदास का दृष्टिकोण और विचार समन्वयवादी है। भक्त और भगवान के संबंध तथा साधना को लेकर जो भी अनुकूल महसूस हुआ उन्होंने उसे अपनी भक्ति पद्धति एवं काव्य में महत्व दिया। निर्गुण-निराकार ब्रह्म और सगुण लीलाधारी भगवान में उन्होंने तत्वतः कोई भेद नहीं माना। आदर्श, मर्यादा तथा समन्वय पर आधारित भक्ति के जिस मार्ग को उन्होंने प्रस्तावित किया उसे वैरागी भक्तों के द्वारा ही नहीं गृहस्थ समाज में भी व्यापक स्वीकृति मिली और वे भारतीय समाज में लोकनायक बन गए। इस तथ्य को रेखांकित करते हुए ग्रियर्सन ने लिखा है, ''भारतीय इतिहास में तुलसीदास का महत्व किसी अत्युक्ति की अपेक्षा नहीं रखता। कृतियों की साहित्यिक विशिष्टता के अतिरिक्त, भागलपुर से पंजाब और हिमालय से नर्मदा तक, सभी वर्गों द्वारा उनकी सार्वजनीन स्वीकृति एक उल्लेखनीय तथ्य है।''

यद्यपि तुलसी प्रधानतः भक्त कवि हैं, लेकिन भक्ति के साथ ही उनमें सुस्पष्ट सामाजिक चेतना है। वे भारतीय समाज के अनुकूल भक्ति का आदर्श ही प्रस्तुत नहीं करते बल्कि पारिवारिक, सामाजिक व्यवस्था का मानदंड भी स्थापित करते हैं जो राम के 'शील, शक्ति और सौंदर्य', भरत के त्याग तथा शिव और राम की परस्पर एक-दूसरे पर आस्था पर आधारित है। मध्यकालीन सामंती समाज में जहाँ क्षुद्र स्वार्थों के लिए निरंतर लड़ाई और कलह का माहौल था, भरत ने अयोध्या के राज को तुच्छ समझा। तुलसीदास भक्ति के पारलौकिक भाव बोध में ही नहीं डूबे, उन्होंने अपने काव्य में आम जनता की भावना और बदहाली को भी दर्ज किया तथा राजा को उसके कर्त्तव्य की बार-बार याद दिलाई। इस प्रकार तुलसीदास भक्तिकाल के सजग भक्त कवि एवं सतर्क सामाजिक आलोचक के रूप में स्थापित हैं। तुलसीदास ने प्रचुर मात्रा में रचना की। भाषा और रूप की दृष्टि से भी वे भक्तिकाल के सबसे समृद्ध कवि हैं। इस इकाई में आगे उनके रचनात्मक व्यक्तित्व तथा काव्य की विशिष्टताओं के विविध पहलुओं की जानकारी दी जा रही है।

6.2 तुलसीदास का जीवन और रचना संसार

मध्यकालीन भक्त कवियों का उद्‌देश्य प्रधानतः अपने आराध्य की महिमा का बयान करना तथा समाज की मुक्ति के लिए अपने दृष्टिकोण के अनुसार साधना की पद्धति और उसका मानदंड तय करना था, इसीलिए मध्यकालीन भक्त कवियों के जीवन के संदर्भ में स्वयं उनकी ओर से बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। तुलसीदास भी ऐसे ही भक्त कवि हैं जिन्होंने अपने को ज्यादा से ज्यादा नेपथ्य में रखा है तथा राम के ऐश्वर्य का बखान अधिक से अधिक किया है। उस समय की अस्थिर सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा तुलसीदास आदि भक्त कवियों के संरक्षण के दायरे से बाहर होने के कारण भी उनके लेखन का यथारूप हमें

बहुत सीमित मात्रा में प्राप्त होता है। इस सीमा के कारण परवर्ती अधिकारी विद्वानों के मत एवं व्याख्या के अनुसार तुलसीदास के जीवन एवं रचना संसार का निर्धारण किया जाता रहा है। तुलसीदास के संदर्भ में एक अच्छी बात यह है कि अपनी दो रचनाओं– 'रामचरितमानस' तथा 'पार्वती मंगल' के लिखे जाने के वर्ष का उल्लेख उन्होंने स्वयं कर दिया है। अकबर के दरबार के टोडरमल से उनके संबंध होने के पक्के प्रमाण हैं। रहीम से भी उनका संबंध होना बताया जाता है। अतः जन्म और रचना के वर्षों में थोड़ा-बहुत अंतर हो सकता है, लेकिन इतना तय है कि मुगल काल के उत्कर्ष के समानांतर ही वे अपने भक्तिकाव्य की रचना कर रहे थे; रामराज्य की परिकल्पना रख रहे थे तथा उसे राम के आदर्श और पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यक्तित्व के माध्यम से पेश कर रहे थे।

तुलसीदास के जीवन के संबंध में हमें जिन लिखित रचनाओं से जानकारी प्राप्त होती है उनमें से कोई भी ऐतिहासिक रचना नहीं है। उनकी प्रामाणिकता अक्षुण्ण नहीं है, लेकिन ये रचनाएँ प्रारंभिक आधार-सामग्री जरूर मुहैया कराती हैं। ऐसी रचनाओं में प्रमुख हैं– 'मूलगोसाईंचरित' (वेणीमाधवदास); 'गोसाईंचरित' (भवानीदास); 'तुलसीचरित' (रघुबरदास); 'गौतमचंद्रिका' (कृष्णदत्त मिश्र); 'घटरामायन' (तुलसीसाहब); 'भक्तमाल' पर भक्तिरसबोधिनी टीका (प्रियादास); 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (गोकुलनाथ) आदि। इन पुस्तकों के अतिरिक्त काशी, अयोध्या, राजापुर तथा सोरों से प्राप्त सामग्री हैं जिनमें तुलसीदास की रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ तथा उनसे संबंधित रचनाएँ हैं, इनसे तुलसीदास के जीवन और काव्य से संबंधित जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। इन रचनाओं में एकरूपता नहीं होने के कारण तुलसीदास के जीवन तथा काव्य से संबंधित विवाद एवं अलग-अलग दावेदारियों का जन्म भी होता है।

आधुनिक युग में तुलसी दास के साहित्य के अकादमिक अध्ययन की शुरूआत विल्सन ने की। 1828 ई. तथा 1832 ई. में प्रकाशित अपने शोधपूर्ण निबंध– 'ए स्केच ऑफ द रिलीजस सेक्ट्स ऑफ द हिंदूज' में विल्सन ने तुलसीदास के जीवन और साहित्य पर प्रकाश डाला। गार्सा द तासी द्वारा लिखित हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहास– 'इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी' (1839 ई.) में तुलसीदास के विषय में दी गई जानकारी विल्सन की सूचनाओं पर ही आधारित है। एफ. एस. ग्राउज ने सर्वप्रथम 'रामचरितमानस' का अंग्रेजी में अनुवाद किया। ग्रियर्सन ने तुलसीदास पर कई शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किए।

हिंदी में तुलसीदास के जीवन और काव्य पर विचार करने वालों में शिवसिंह सेंगर, बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पं॰ रामनरेश त्रिपाठी, माताप्रसाद गुप्त आदि प्रारंभिक महत्वपूर्ण विद्वान हैं।

तुलसीदास का जीवन

सामान्यतः तुलसीदास का जन्म 1532 ई. में होना बताया जाता है, परंतु यह जन्म वर्ष सर्वमान्य नहीं है। 'मूलगोसाईंचरित' में उनका जन्म संवत् 1554 (1497 ई.) में माना गया है। विल्सन तथा गार्सा द तासी ने उनका जन्म संवत् 1600 (1543 ई.) में माना है। 'घट रामायन' के लेखक तुलसी साहब, रामगुलाम द्विवेदी, डा. ग्रियर्सन आदि ने तुलसीदास का जन्म संवत् 1589 (1532 ई.) माना है तथा इसे ही सर्वाधिक स्वीकृति प्राप्त हुई है।

तुलसीदास के जन्म के वर्ष की तरह जन्म-स्थान को लेकर भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। वैसे तो काशी, अयोध्या, चित्रकूट के निकट हाजीपुर (विल्सन तथा गार्सा द तासी के अनुसार) आदि को भी अलग-अलग विद्वानों ने तुलसीदास के जन्म-स्थान के रूप में चिह्नित किया

है, परंतु जिन दो स्थानों के लिए ज्यादा दावे-प्रतिदावे हैं, वे हैं– राजापुर (जिला– बाँदा, उत्तर प्रदेश) तथा सोरों (जिला– एटा, उत्तर प्रदेश)। सोरों के समर्थक विद्वानों में पं. रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. राजाराम रस्तोगी, डॉ. दीनदयालु गुप्त आदि हैं। राजापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान मानने वाले लेखकों की संख्या किंचित अधिक है। शिवसिंह सेंगर, मिश्र बंधु, बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि ने राजापुर को ही तुलसी का जन्म-स्थान माना है। उत्तर प्रदेश शासन भी राजापुर को ही मान्यता देता है। यही स्थान अब तुलसीदास के जन्म-स्थान के रूप में आम स्वीकृति पा चुका है। तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हुलसी था। तुलसीदास की माता के नाम का उल्लेख रहीम के एक पद में मिलता है :

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिए हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय।।

तुलसीदास के बचपन से जुड़ी कई किंवदंतियाँ एवं अप्रामाणिक उल्लेख प्राप्त होते हैं। 'मूलगोसाईंचरित' में यह बताया गया है कि तुलसीदास के जन्म के पाँच दिन बाद ही उनकी माँ की मृत्यु हो गई। चुनिया (दासी मुनिया की सास) नामक दासी ने इनका लालन-पालन किया परंतु छः वर्ष बाद उसकी भी मृत्यु हो गई। पिता ने अशुभ मानकर त्याग दिया। तुलसीदास के आश्रयविहीन, दुखमय एवं संसाधनहीन बचपन का संकेत उनकी रचनाओं से भी प्राप्त होता है। 'कवितावली' तथा 'विनय-पत्रिका' में तुलसीदास ने अपने कष्टमय बचपन का जिक्र बार-बार किया है। 'कवितावली' में उन्होंने जिक्र किया है कि बचपन से ही दीन-हीन होने के कारण चने के चार दाने के लिए द्वार-द्वार ललचाते, बिललाते फिरना पड़ा है :

बारेतें ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन,

जानत हौ चारिफल चारि ही चनकको।।

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में अपने गुरु का जिक्र करते हुए लिखा है :

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।

इन पंक्तियों के आधार पर तुलसीदास के गुरु का नाम नरह्र्यानंद या फिर नरहरिदास बताया जाता है। ग्रियर्सन ने नरहरिदास को रामानंद की परंपरा में बताते हुए तुलसीदास को इस परंपरा की आठवी पीढ़ी में रखा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तुलसीदास के गुरु का नाम बाबा नरहरिदास तो बताया है परंतु ये रामानंद की परंपरा से भिन्न हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है, ''तुलसीदास जी रामानंद संप्रदाय की वैरागी परंपरा में नहीं जान पड़ते। उक्त संप्रदाय के अंतर्गत जितनी शिष्य परंपराएँ मानी जाती हैं उनमें तुलसीदास का नाम कहीं नहीं है। रामानंद परंपरा में सम्मिलित करने के लिए उन्हें नरहरिदास का शिष्य बताकर जो परंपरा मिलाई गई है वह कल्पित प्रतीत होती है। वे रामोपासक वैष्णव अवश्य थे, पर स्मार्त वैष्णव थे।'' बाबा नरहरिदास से तुलसीदास ने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की थी तथा रामकथा भी इन्हीं से सुनी थी। आगे चलकर शेष सनातन से तुलसीदास ने इतिहास, वेद, पुराण, दर्शन आदि की शिक्षा पाई।

जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास की शादी दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुई थी। इन्हें अपनी पत्नी से अत्यधिक लगाव था। ऐसा कहा जाता है कि एक बार जब पत्नी मायके चली गई तब अँधेरी रात में नदी पार कर वे ससुराल पहुँचे थे। वहाँ पत्नी ने फटकार लगाई :

हाड़ मांस की देह मम तापर जितनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम प्रति अवसि मिटिहि भवभीति।

पत्नी से उलाहना मिलने के बाद तुलसीदास विरक्त हो गए। दांपत्य जीवन से विरक्ति के बाद तुलसीदास भक्ति की ओर उन्मुख हो गए। उन्होंने अयोध्या, प्रयाग, काशी, मिथिला, बदरिकाश्रम, ब्रज आदि की तीर्थयात्राएँ कीं। उनके जीवन का ज्यादातर समय राजापुर, अयोध्या, चित्रकूट तथा काशी में व्यतीत हुआ। अंत में वे काशी में स्थाई रूप से निवास करने लगे। पं गंगाराम ज्योतिषी, टोडरमल तथा रहीम उनके मित्रों में थे। काशी में तुलसीदास कुछ समय तक किसी मठ के महंथ भी रहे थे।

तुलसीदास की काव्य-यात्रा 1569-70 ई. के आसपास से शुरू हुई तथा यह उनके मृत्यु पर्यंत, 1623 ई. तक निरंतर चलती रही। तुलसीदास ने अपनी रचना के लिए संस्कृत को छोड़कर जनभाषाओं को चुना तथा राम के जीवन चरित, आदर्श और भक्ति को सर्वसुलभ बना दिया; इसका आम जनता एवं सुलझे हुए धार्मिक लोगों में अपार स्वागत हुआ वहीं एकाधिकारवादी संकीर्ण पंडे-पुरोहितों ने उनका विरोध भी किया। इस विरोध का प्रमाण तुलसीदास की रचनाओं में भी मिलता है :

खल परिहास होई हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा।।
हंसहिं बक दादुर चातकही। हंसहिं मलिन खल बिमल बतकही।।
कबित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू।।
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसें नहिं खोरी।।

तुलसीदास अपने विरोधियों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि उनके उपहास से मुझे फायदा ही होगा। कौए तो कठोर ही कहते हैं। जैसे बगुले हंस पर, मेढ़क पपीहे पर हँसते हैं वैसे ही मलिन भावना रखने वाले दुष्ट निर्मल वाणी पर हँसते हैं। जिनकी राम के पद में प्रीति नहीं है, जो न कविता के रसिक हैं उनके लिए इसमें हास-रस है, अर्थात ऐसे लोगों के लिए

मेरी कविता उपहास योग्य है। मेरी कविता 'भाषा' में है, मेरी बुद्धि मोटी है यह सब उनके लिए हँसने के ही योग्य है।

जीवन के अंतिम दिनों में तुलसीदास को शारीरिक व्याधियों ने आ घेरा। उन्हें कष्टप्रद बाहु-पीड़ा हो गई। इसके निवारण के लिए उन्होंने हनुमान जी से प्रार्थना करते हुए 'हनुमानबाहुक' की रचना की। 'कवितावली' में भी वृद्धावस्था संबंधी कष्टों का विवरण आया है।

तुलसीदास की मृत्यु के संबंध में जनमानस में एक दोहे का प्रसार है :

संबत सोरह सै असी असी गंग के तीर।
सावन सुक्ला सत्तमी तुलसी तजेउ सरीर।।

संवत् 1680 अर्थात 1623 ई. में तुलसीदास की मृत्यु को प्रायः सभी ने स्वीकार किया है।

तुलसीदास का रचना संसार

तुलसीदास के जीवन के अन्य विभिन्न प्रसंगों की तरह रचनाओं (संख्या) को लेकर भी उनके अध्येताओं के बीच मतैक्य नहीं है। शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास ग्रंथ 'शिवसिंह सरोज' में तुलसीदास की रचनाओं की संख्या अठारह बताई है। ग्रियर्सन ने सोलह ग्रंथों का उल्लेख करते हुए यह तथ्य सामने रखा है कि 'शिवसिंह सरोज' में उल्लिखित ग्रंथों में से 'रामशलाका', 'कुंडलिया रामायण', 'करक (?) रामायण', 'रोला रामायण', 'झूलना रामायण', उन्हें प्राप्त नहीं हुई। उनके द्वारा देखी-पढ़ी गई तुलसी की रचनाएँ हैं– 'गीतावली', 'कवितावली या कवित रामायण', 'दोहावली या दोहा रामायण', 'चौपाई रामायण', 'सतसई', 'पंचरत्न' (पाँच लघु काव्यों– (i) 'जानकी मंगल' (ii) 'पार्वती मंगल' (iii) 'वैराग्य संदीपनी' (iv) रामलला नहछू तथा (v) बरवैरामायण का एकत्र संकलन), 'श्री रामाज्ञा', 'संकटमोचन', 'विनय-पत्रिका',

'हनुमानबाहुक' तथा 'कृष्णावली'। मिश्र बंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' में तुलसीदास के पच्चीस ग्रंथों का उल्लेख किया है। नागरी प्रचारिणी सभा के विवरण में तुलसीदास के पैंतीस ग्रंथों की सूचना दी गई है। माताप्रसाद गुप्त ने तुलसीदास के नाम से मिलने वाली रचनाओं की संख्या 39 तथा प्रामाणिक रचनाओं की संख्या बारह बतलाई है। उन्होंने 'वैराग्य संदीपनी' को बारह की सूची से बाहर रखा है तथा उसमें 'हनुमानबाहुक' को शामिल किया है। उदयभानु सिंह 'हनुमानबाहुक' को 'कवितावाली' के अंतर्गत शामिल करते हुए बारह प्रामाणिक रचनाओं में 'वैराग्य संदीपनी' को भी शामिल किया है। तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाएँ हैं– (i) 'वैराग्य संदीपनी' (ii) 'रामाज्ञाप्रश्न' (iii) 'रामलला नहछू' (iv) 'जानकी मंगल' (v) 'रामचरितमानस' (vi) 'पार्वती मंगल' (vii) 'गीतावली' ('पदावली रामायण') (viii) 'कृष्णगीतावली' (ix) 'दोहावली' (x) 'बरवैरामायण' (xi) 'विनय-पत्रिका' (रामगीतावली) तथा (xii) 'कवितावली'। आगे तुलसीदास की इन रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है।

वैराग्य संदीपनी : 'वैराग्य संदीपनी' को माताप्रसाद गुप्त ने प्रामाणिक रचनाओं में शामिल नहीं किया है। पं. रामनरेश त्रिपाठी इसे तुलसीदास की पहली रचना मानते हैं। उदयभानु सिंह ने तुलसीदास के जीवन में आसक्ति से वैराग्य की ओर मुड़ने की लोक मान्यता तथा रचना शैली और विचारधारा में प्रौढ़ता के अभाव के आधार पर इसे तुलसीदास की प्रारंभिक रचना माना है। उनके अनुसार 'वैराग्य संदीपनी' संवत् 1626-27 (1569-70 ई.) के लगभग की रचना है। इसमें वैराग्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। तुलसीदास के समन्वय भावना की प्रथम झलक इस कृति में प्राप्त होती है। इसमें उन्होंने सगुण निर्गुण में कोई भेद नहीं माना है।

रामाज्ञाप्रश्न : यह रचना 'वैराग्य संदीपनी' के बाद की है। इसका अनुमानित रचनाकाल संवत् 1627-28 (1570-71 ई.) है। इसकी भाषा ब्रजभाषा है। इसकी रचना शकुन विचारने के लिए की गई थी। 'रामाज्ञाप्रश्न' में सात सर्गों में राम की कथा कही गई है। इसमें सीता निर्वासन का प्रसंग शामिल किया गया है जिसे 'रामचरितमानस' में छोड़ दिया गया है।

रामलला नहछू : इस कृति का अनुमानित रचनाकाल संवत् 1628-29 (1571-72 ई.) है। 'रामलला नहछू' सोहर शैली में लिखी गई 20 चतुष्पदियों की छोटी सी रचना है जिसमें मांगलिक अवसर पर नख काटने के रिवाज को श्रृंगारिकता के साथ व्यक्त किया गया है। माताप्रसाद गुप्त ने इसे विवाह का नहछू माना है जबकि रामजी तिवारी का मत है कि 'रामलला नहछू विवाह के अवसर का नहछू न होकर यज्ञोपवीत के अवसर का है क्योंकि विवाह के समय राम अयोध्या में थे ही नहीं।' यह रचना अवधी में लिखी गई है।

जानकी मंगल : इसका अनुमानित रचनाकाल संवत् 1629-30 (1572-73 ई.) है। अवधी भाषा में लिखी गई 'जानकी मंगल' में राम एवं सीता के विवाह को चित्रित किया गया है। इसमें परशुराम-प्रसंग 'रामचरितमानस' से भिन्न है। इसमें परशुराम का मिलन राम से तब होता है जब शादी के पश्चात बारात अयोध्या लौट रही होती है।

रामचरितमानस : 'रामचरितमानस' संपूर्ण हिंदी वाङ्मय की सर्वश्रेष्ठ कृत्तियों में से एक है। अवधी भाषा में लिखी गई इस प्रबंधात्मक कृति के रचनाकाल का जिक्र तुलसीदास ने स्वयं कर दिया है। तुलसीदास ने इसके लेखन का प्रारंभ संवत् 1631 (1574 ई.) में किया। इसके लेखन का कार्य दो वर्ष, सात महीने तथा छब्बीस दिन में पूरा हुआ। 'रामचरितमानस' में सात कांडों – बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड, सुंदरकांड, लंकाकांड तथा उत्तरकांड – में राम की कथा कही गई है। कांडों की यह संख्या, नाम और क्रम तुलसीदास

की अन्य कई रचनाओं में भी है। इस कृति में तुलसीदास ने 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं' भक्ति निरूपण के साथ ही पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन की मर्यादा एवं आदर्श को प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त लोक जीवन के सांस्कृतिक पक्ष के समुच्चय को भी तुलसीदास ने अपनी इस महान रचना में पिरोया है।

पार्वती मंगल : यह कृति संवत् 1643 (1586 ई.) में लिखी गई। इसकी भाषा अवधी है तथा इसमें पार्वती एवं शिव के विवाह की कथा कही गई है।

गीतावली : 'गीतावली' का रचनाकाल संवत् 1630 से 1670 (1573 ई. से 1613 ई.) के बीच है। इसे 'पदावली रामायण' के रूप में भी जाना जाता है। यह प्रगीतात्मक मुक्तक काव्य है जिसमें रामकथा आधारित गीतों को संगृहीत किया गया है। इसमें संगृहीत गीत विभिन्न राग-रागिनियों पर आधारित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, ''गीतावली की रचना गोस्वामी जी ने सूरदास जी के अनुकरण पर की है। बाललीला के कई एक पद ज्यों के त्यों 'सूरसागर' में भी मिलते हैं, केवल 'राम' 'श्याम' का अंतर है। ... उत्तरकांड में जाकर सूर पद्धति के अतिशय अनुकरण के कारण उनका गंभीर व्यक्तित्व तिरोहित-सा हो गया है। जिस रूप में राम को उन्होंने सर्वत्र लिया है, उनका भी ध्यान उन्हें नहीं रह गया। 'सूरदास' में जिस प्रकार गोपियों के साथ श्रीकृष्ण हिंडोला झूलते हैं, होली खेलते हैं, वही करते राम भी दिखाए गए हैं। ... राम की नखशिख शोभा का अलंकृत वर्णन भी सूर की शैली पर बहुत-से पदों में लगातार चला गया है। सरयूतट के इस आनंदोत्सव को आगे चलकर रसिक लोग क्या रूप देंगे इसका ख्याल गोस्वामी जी को न रहा।''

कृष्णगीतावली : इसका रचनाकाल संवत् 1643 से 1660 (1586 ई. से 1603 ई.) के बीच है। इसमें कृष्ण के जीवन संबंधी गीतों को संगृहीत किया गया है।

दोहावली : दोहावली स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। इसमें संगृहीत दोहे तुलसीदास की अन्य रचनाओं से भी लिए गए हैं। इस ग्रंथ के दो दोहे 'वैराग्य संदीपनी' से लिए गए हैं, 35 दोहे 'रामाज्ञाप्रश्न' से तथा 85 दोहे 'रामचरितमानस' से। इस ग्रंथ में कुल 573 दोहे हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ के शेष 451 दोहे स्वतंत्र रूप से रचे गए हैं। 'वैराग्य संदीपनी' में ही इसके दो दोहे मिलने के कारण ऐसा माना जाता है कि इसकी रचना तुलसीदास की रचनात्मकता के प्रारंभिक दिनों से जीवन के अंतिम दिनों तक चलती रही। अतः इसका रचनाकाल संवत् 1626 से संवत् 1680 (1569 से 1623 ई.) माना गया है। 'दोहावली' में विषयों की विविधता है। इसमें राम के विलक्षण व्यक्तित्व, भक्ति के स्वरूप, नाम महिमा, सामाजिक आचार-व्यवहार, नीति, धर्म आदि से संबंधित दोहे संकलित किए गए हैं।

बरवैरामायण : बरवैरामायण' की जो प्रतियाँ पाई गई हैं उसमें पाठ-भेद ज्यादा है और एकरूपता नहीं है। माताप्रसाद गुप्त का मानना है, ''यह रचना उनकी ऐसी कृतियों में ज्ञात होती है जिन्हें तुलसीदास अंतिम रूप नहीं दे सके थे। कदाचित् इसीलिए इस रचना के एक से अधिक रूप प्राप्त होते हैं।'' इस रचना में बरवै छंद में राम की कथा कही गई है। कथा सात कांड में विभाजित है, पर यह 69 बरवै छंद में लिखे गए मुक्तकों का संकलन है। पुस्तक का रचनाकाल संवत् 1630 से 1680 (1573 से 1623 ई.) के बीच है।

विनय-पत्रिका : 'विनय-पत्रिका' भी 'गीतावली' की तरह लंबे कालखंड में रची गई कृति है। ब्रजभाषा में लिखी गई इस कृति को बहुधा 'रामगीतावली' के नाम से भी जाना जाता है। इसका रचनाकाल संवत् 1631 से 1679 (1574 से 1622 ई.) के बीच है। 'विनय-पत्रिका' मुक्तकों का संग्रह है, इन मुक्तकों के माध्यम से तुलसीदास ने अपना आत्मनिवेदन प्रभु श्रीराम को अर्पित किया है। इस कृति में राम के प्रति उनके अनन्य प्रेम तथा दैन्य भक्ति की सघन

अभिव्यक्ति हुई है। 'विनय-पत्रिका' में मुख्य रूप से तुलसीदास की आत्माभिव्यक्ति व्यक्त हुई है। रामजी तिवारी ने इसमें तत्कालीन मुगल राजव्यवस्था की शैली को रेखांकित करते हुए लिखा है, ''गोस्वामी जी द्वारा अपनाई गई पत्रिका-प्रेषण की इस प्रणाली में मुगलकालीन दरबारी सभ्यता का प्रभाव भी लक्षणीय है, इसमें सात ड्योढ़ियों को पार करने, अंगरक्षकों को प्रसन्न करने और महारानी की अनुकंपा प्राप्त करने का अपना महत्व था।'' इस कृति की रचना ब्रजभाषा में हुई है।

कवितावली : 'कवितावली' भी लंबी अवधि की रचना है। इसका रचनाकाल संवत् 1631 से 1680 (1574 ई. से 1623 ई.) के बीच है। इसके कुछ संस्करणों में 'हनुमानबाहुक' भी शामिल है, हालाँकि गीताप्रेस से प्रकाशित 'कवितावली' में 'हनुमानबाहुक' शामिल नहीं है। यह मुक्तकों का संग्रह है। इसकी भाषा ब्रजभाषा है तथा यह सात कांडों में विभाजित है। 'कवितावली' में रामभक्ति से संबंधित मुक्तकों के साथ तुलसीदास का आत्मोल्लेख भी मौजूद है। 'कवितावली' के उत्तरकांड के कुछ मुक्तकों में तत्कालीन सामाजिक जीवन में आम लोगों की दीनता, अभावग्रस्तता तथा उस समय फैली महामारी का प्रभावशाली चित्रण हुआ है।

बोध प्रश्न

1. नीचे दिए गए प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   (क) 'मूलगोसाईंचरित' के लेखक ..... थे।

   (ख) ..... कृष्णदत्त मिश्र की रचना है।

   (ग) 'रामचरितमानस' का अंग्रेजी में सर्वप्रथम अनुवाद ..... ने किया।

   (घ) ग्रियर्सन ने तुलसी का जन्म वर्ष ..... माना है।

(ड़) मिश्र बंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' में तुलसी की ..... रचनाओं का उल्लेख किया है।

2. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए।

(क) 'पार्वती मंगल' में किस प्रसंग की कथा कही गई है?

.....

.....

(ख) 'जानकी मंगल' की कथावस्तु में 'रामचरितमानस' की कथावस्तु से क्या भिन्नता है?

.....

.....

(ग) 'रामचरितमानस' के सभी कांडों का नाम बताइए।

.....

.....

(घ) तुलसीदास की किस रचना में उनके दैन्य भाव की केंद्रीयता है?

.....

.....

3. 'रामचरितमानस' तथा 'कवितावली' का संक्षिप्त परिचय दीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.3 तुलसीदास की भक्ति

भक्ति ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति का भाव है। वैसी भक्ति जो शास्त्रोक्त विधि से की जाती है उसे वैधी भक्ति तथा जिसमें भक्त ईश्वर के प्रति वात्सल्य, सख्य, दांपत्य अथवा दास्य आदि भाव निवेदित अथवा वर्णित कर अपना भाव अर्पित करता है उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। 'भागवत' तथा 'आध्यात्म रामायण' में किंचित अंतर के साथ भक्ति के नौ साधन बताए गए हैं, इन्हें नवधा भक्ति कहते हैं। तुलसीदास की भक्ति-पद्धति में भक्ति के इन सारे साधनों अथवा रूपों की झलक किसी न किसी रूप में मौजूद है। हालाँकि जहाँ वे स्वयं अपनी निजी अनुरक्ति प्रभु के प्रति अर्पित कर रहे होते हैं वहाँ वे मुख्य रूप से दैन्य भाव ही प्रदर्शित करते हैं। वात्सल्य कौशल्या, दशरथ आदि के माध्यम से; दांपत्य की सीमित और मर्यादित अभिव्यक्ति शिव-पार्वती, राम-सीता आदि के विवाह के अनंतर तथा सख्य भाव निषादराज, सुग्रीव, विभीषण आदि के बहाने व्यक्त हुई है। भक्ति के इन रूपों-साधनों के अतिरिक्त उसकी दार्शनिकता, उसके प्रधान भेद सगुण-निर्गुण तथा सगुण मत के अंदर शैव-वैष्णव मत के विभेद तथा इनके बीच समन्वय के बिंदु आदि अनेक पक्ष तुलसीदास के भक्ति निरूपण के अंतर्गत विचारणीय हैं।

तुलसीदास की भक्ति में कुछ चीजें आधार रूप में हैं। वे स्मार्त वैष्णव हैं। उदयभानु सिंह के अनुसार, ''स्मार्त धर्म की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं– वर्णाश्रमधर्म-निष्ठा और गणेश, सूर्य, शिव, दुर्गा तथा विष्णु; इन पाँच देवों की उपासना। पहली विशेषता तुलसी की सभी प्रमुख कृतियों में सम्यक रूप से अभिव्यक्त हुई हैं, किंतु पंचदेवों का योजनाबद्ध स्तवन 'विनय-पत्रिका' में ही मिलता है।'' हालाँकि योजनाबद्धता से इतर देखें तो इन देवों की अपने इष्ट देव के रूप में तो नहीं पर प्रसंगवश जगह-जगह अर्चना की गई है।

आधार रूप में तुलसीदास की भक्ति की निजी विशिष्टताओं में प्रमुख हैं– अवतारवाद की स्वीकृति और ईश्वर के सगुण रूप के प्रति आग्रह, सगुण और निर्गुण में पार्थक्य की अस्वीकृति, राम की सर्वोच्चता तथा दिव्यता के प्रति सचेत भाव, निज भक्ति में गहन रूप से शरणागति और दास्य का भाव तथा (कलियुग में) नाम जप को भक्ति की केंद्रीय प्रविधि का प्रस्ताव।

तुलसीदास विष्णु के अवतार राम के भक्त हैं। यद्यपि वे निपुण कवि भी हैं पर निरंतर कवि व्यक्तित्व की जगह भक्त व्यक्तित्व को प्राथमिक बनाने की व्यग्रता उनमें दिखाई देती है। वे ऐसी कविता जिसमें कवित्व के गुण हों पर राम की मौजूदगी नहीं हो, उसे वरेण्य नहीं मानते। कविता का कार्य उनके लिए संसार के मंगल की साधना है। वह राम की मौजूदगी से ही संभव है :

> भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह ने सोऊ।।
> ...
> भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी।।

तुलसीदास से पूर्व हिंदी साहित्य में वीरगाथात्मक काव्य लिखने वाले चारण कवि हो चुके थे। उनके आसपास ही दरबारी मनोवृत्ति वाले केशवदास हुए। लेकिन तुलसीदास ने काव्य-

कर्म की इस मनोवृत्ति से अपने को अलग ही नहीं रखा बल्कि ऐसे कृत्य को विद्या का अपमान माना, 'कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।' प्राकृत जन के अपने आग्रह-दुराग्रह हो सकते हैं इसलिए तुलसीदास उस ईश्वर का गुणगान करते हैं जो समदर्शी है, जो सबका कल्याण करता है।

तुलसीदास की भक्ति में जो तथ्य प्राथमिक महत्व का है वह यह है कि तुलसी के राम सगुण अवतारी राम हैं। यद्यपि वे तत्वतः ईश्वर को निर्गुण और गुणातीत मानते हैं, पर साथ ही इस बात पर जोर देते हैं कि वही परमेश्वर जो निराकार है, भक्तों के हित के लिए देह धारण कर अवतार लेता है। वे (ईश्वर) भक्तों के प्रति ममत्व का भाव रखते हैं तथा कभी उस पर क्रोध नहीं करते हैं। आशय यह है कि सदा वे भक्तों का कल्याण करते हैं :

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा।।
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना।।
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी।।
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू।।

तुलसीदास की भक्ति में एक विशेष प्रवृत्ति दिखाई देती है, वह है अपनी मान्यताओं के प्रति दृढ़ रवैया। चूँकि उनमें भक्ति से संबंधित कई संदर्भो में द्विआयामिता है, समन्वय की चेष्टा है– जैसे सगुण और निर्गुण में, शिव और राम (विष्णु) में; बावजूद इसके उनकी मान्यता और आराधना के जो केंद्रीय तत्व हैं उसके प्रति वे खासा आग्रही हैं। अपने समस्त काव्य में उसे वे बार-बार दुहराते हैं। वनवास से लौटने के पश्चात जब राम का राज्याभिषेक होता है, उस समय भाटों का वेश धारण करके आए चारों वेद उनके सगुण रूप का गुणगान करते हुए उसे ही वरेण्य मानते हैं :

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।

ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं।।
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं।।

अर्थात जो ब्रह्म को अजन्मा और अद्वैत मानते हुए ऐसा कहते हैं कि ब्रह्म मन से परे हैं जिन्हें अनुभव से ही जाना जा सकता है, वे ऐसा कहें; पर हम तो आपके सगुण रूप को गाते हैं। हे करुणामय, सदगुण देव मैं तो आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि अपने मन, वचन, कर्म से दोषों को त्यागकर आपके चरणों में मेरा अनुराग हो।

ईश्वर के अवतार के जो कारण तुलसीदास ने बताए हैं उनमें भक्तों का प्रेम तथा धर्म की रक्षा प्रमुख हैं। जब पृथ्वी पर धर्म की हानि होती है, असुरों का उत्पात बढ़ता है, वेद की मर्यादा प्रभावित होती है, तब इसके समाधान के लिए ईश्वर अवतार लेते हैं।

राम के अवतारी रूप को लेकर तुलसीदास जितने आग्रही हैं उतना ही इस बात को रेखांकित करने में सचेत हैं कि उनका जो नर रूप है वह भक्तवत्सल प्रभु की लीला है। तुलसीदास लीला का वर्णन करते हुए बार-बार याद दिलाते हैं कि अपने मूल में वे इच्छा रहित, अजन्मा, निर्गुण हैं; वे भक्तों के लिए विभिन्न प्रकार के अलौकिक रूपों को धारण करते हैं :

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुण नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप।।

सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की स्वीकृति तुलसीदास को इनके समन्वय की ओर अग्रसर करती है। समन्वय उनकी भक्ति का एक प्रमुख पक्ष है। उनका मानना है कि पानी और बर्फ में तत्वतः कोई भेद नहीं है वैसे ही सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है, 'जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें/जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें।'

'रामचरितमानस' के बालकांड में भी तुलसीदास नामजप की महिमा का बखान करने के क्रम में सगुण और निर्गुण ब्रह्म में अभेद को दर्शाते हैं, 'एकु दारुगत देखिअ एकू।/पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू।।' अर्थात ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है। निर्गुण ब्रह्म उस अप्रकट अग्नि के समान है जो काठ के अंदर है पर सामान्य नजर से दिखाई नहीं देता। सगुण ब्रह्म काठ से निकलने वाली अग्नि के समान है। इसी तरह 'दोहावली' में सगुण और निर्गुण में जो मूलतः साम्यता है उसे समझाते हुए वे कहते हैं, 'अंक अगुन आखर सगुन समुझिअ उभय प्रकार।' अंक में लिखे जाने से किसी संख्या का बोध होता है, उसी संख्या को अक्षर में भी लिखा जा सकता है और इससे कोई अंतर नहीं आता। इसी तरह ब्रह्म को सगुण या निर्गुण कहने से कोई अंतर नहीं आता।

सगुण और निर्गुण के समन्वय की तरह ही वे शिव और विष्णु (राम) की भक्ति का भी समन्वय करते हैं। मध्यकाल में सनातन धर्म विभिन्न पंथों– शैव, वैष्णव आदि– में बँटा हुआ था, तुलसीदास इस विभेद को दूर करना चाहते थे। तुलसीदास के साहित्य में राम के बाद शिव को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। 'रामचरितमानस' की कथा उमा-शंभु संवाद के रूप में कही गई है। शिव निरंतर राम के चरण में अपनी रति (प्रेम) प्रकट करते हैं। सीता के हरण के बाद राम व्याकुल होकर सीता को खोजते फिर रहे हैं। नर रूप में राम की व्याकुलता देखकर शिव की पत्नी सती को राम के देवत्व के प्रति मोह यानि संशय उत्पन्न होता है लेकिन सती पाती हैं कि जो शिव संसार भर के ईश्वर हैं; देवता, मनुष्य, मुनि जिनके आगे सिर नवाते हैं। उन्होंने एक राजा के बेटे को सच्चिदानंद कह उसको प्रणाम किया। उसकी छवि को देखकर इतने प्रेममग्न हो गए कि हृदय का प्रेम रोके नहीं रूकता। सती के संशय

को जान शिव उन्हें संदेह न रखने की सलाह देते हैं और उनके नर रूप को भक्तों के हित में लिया गया अवतार बताते हैं :

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं।।
सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी।।

अर्थात (शिव कहते हैं) मुनि, योगी, सिद्ध और संत निर्मल मन से जिसका ध्यान करते हैं। वेद, पुराण और शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर जिसका यश गाते हैं, उसी माया के धनी व्यापक ब्रह्म ने अपने भक्तों के हित में रघुकुल में अवतार लिया है।

सती का संशय दूर नहीं होता तो शिव उनसे मर्यादा में रहते हुए परीक्षा लेने की बात करते हैं। सती मर्यादा नहीं मानती हैं और सीता के रूप में राम के सामने प्रकट होती हैं इसे जान कर शिव दुखी होते हैं। राम भी विभिन्न प्रकरणों में शिव की किसी अवमानना को सहन नहीं करने का भाव रखते हैं। 'रामचरितमानस' में पार्वती-विवाह की कथा भारद्वाज को सुनाने के बाद याज्ञवलक्य कहते हैं कि जिनका अनुराग शिव जी के चरण-कमल में नहीं है उसे राम स्वप्न में भी पसंद नहीं करते, 'सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं।।' उत्तरकांड में स्वयं राम कहते हैं कि शंकर की भक्ति के बिना मेरी भक्ति संभव नहीं है, 'औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरी।/संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।।' लेकिन तुलसीदास की भक्ति के संदर्भ में एक तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि वे भले ही शिव और राम की सह-भक्ति में कोई विरोध नहीं मानते; यथास्थान गणेश, सरस्वती आदि विभिन्न देवी-देवताओं की वंदना भी करते हैं पर राम की निज भक्ति

और सर्वोच्चता के प्रति वे अत्यंत आग्रही हैं। 'विनय-पत्रिका' में वे गणेश, सूर्य, शिव, उमा, गंगा, यमुना, हनुमान आदि की जो स्तुति करते हैं, उनमें वे इन देवी देवताओं से रघुवीर के पद में प्रीति का ही वरदान माँगते हैं। यद्यपि राम अंशावतार हैं (अंसन्ह सहित देह धरि ताता।/करिहऊँ चरित भगत सुखदाता), लेकिन तुलसीदास जब राम के ब्रह्मत्व, दिव्यता और महिमा का बखान करते हैं तो ब्रह्म का सर्वोच्च आसन उन्हें प्रदान करते हैं :

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान।।

अर्थात सरस्वती, शेष, शिव, ब्रह्मा, शास्त्र, वेद और पुराण उनकी महिमा का गुणगान 'नेति-नेति' (यह भी नहीं, वह भी नहीं) कहकर करते हैं। अन्यत्र एक जगह वे दर्शाते हैं कि शिव, ब्रह्मा और विष्णु उन्हीं के अंश से उत्पन्न होते हैं, 'संभु बिरंचि विष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना।' दरअसल तुलसीदास के राम परम विष्णु अथवा परम ब्रह्म हैं। उदयभानु सिंह के अनुसार, ''उपनिषदकारों और वेदांतियों ने जिसे ब्रह्म कहा है, शैवों ने जिसे परमशिव माना है, वैष्णवों की दृष्टि में जो परमविष्णु हैं, उसी परमार्थ तत्व को तुलसी राम कहते हैं।''

तुलसीदास ने अपनी भक्ति पथ को वेद सम्मत कहा है :

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।।

अर्थात प्रभु की भक्ति का मार्ग वेद सम्मत तथा वैराग्य और ज्ञान से युक्त है। जो मनुष्य मोहवश इसका अनुसरण नहीं करता, विभिन्न पंथों के बीच भटकता रहता है। यहाँ तुलसीदास ने ज्ञान के साथ भक्ति के सह-अस्तित्व को स्वीकार किया है। दरअसल तुलसीदास ने ज्ञान को भक्ति का सहयोगी माना है, 'बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर

छाई।।' हालाँकि उपासना पद्धति के रूप में वे ज्ञानमार्ग की जगह भक्तिमार्ग को महत्व देते हैं। तुलसीदास ज्ञानमार्ग की कठिनता की ओर संकेत करते हैं, 'कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।' साथ ही वे इसे निबाहना दुष्कर मानते हैं। उत्तरकांड में काकभुशुंडि गरुड़ से कहते हैं कि ज्ञानमार्ग तलवार की धार के समान है इससे गिरते देर नहीं लगती, 'ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा।।' तुलसीदास का मानना है कि जो राम के भजन के बिना मोक्ष चाहता है वह ज्ञानवान होते हुए भी बिना पूँछ और सींग के पशु के समान है :

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान।।

दार्शनिक स्तर पर तुलसीदास में शंकर के अद्वैतवाद तथा रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद दोनों की झलक दिखाई देती है। भगवान के सगुण रूप के प्रति आग्रह के बावजूद उनके स्वरूप की अनिर्वचनीयता को विभिन्न रूपों में, विविध प्रसंगों में वे दुहराते हैं। इस जगत को शंकर के अद्वैत की तरह असत्य मानते हैं वैसे ही जैसे बिना जाने रस्सी में साँप का भ्रम होता है :

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें।।
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई।।

लेकिन दूसरी ओर वे 'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।' कहकर विशिष्टाद्वैत की मान्यता को भी स्वीकार करते हैं। माया को तुलसीदास ने भ्रम में डालने वाली शक्ति के रूप में रेखांकित किया है जिसके प्रभाव से कोई नहीं बच सका, लेकिन उनके अनुसार वह प्रभु राम की दासी है।

अपनी भक्ति की पद्धति में तुलसीदास ने शरणागति एवं दैन्य भाव को चुना है। 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड में राम राज्याभिषेक के छह माह पश्चात वानरों को अपने-अपने घर जाने की बात करते हुए कहते हैं कि मुझे अपने दासों से विशेष प्रेम है, 'सब कें प्रिय सेवक यह नीती।/मोरें अधिक दास पर प्रीति।' काकभुशुंडि गरूड़ को संदेश देते हैं कि स्वयं और ईश्वर के बीच सेवक और सेव्य भाव के बिना संसार से मुक्ति संभव नहीं है :

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारी।।

'विनय-पत्रिका' में तुलसीदास की शरणागति और दैन्य भाव की गहन अभिव्यक्ति हुई है। वे राम से अपनी दीनता प्रकट करते हुए अपने को पापी तथा प्रभु को दयालु बताते हैं। अपने को अनाथ और दुखी तथा राम को अनाथों के नाथ तथा दुखहर्ता बताते हैं :

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी।।
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो।।

वे अपनी विकलता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि तुम्हें छोड़कर कहाँ जाऊँ। आपके समान पापों को हरने वाला और गरीबों को प्रेम करने वाला कौन है :

जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दिन पियारे।

तुलसीदास ने अपनी भक्ति में नवधा भक्ति को स्वीकार किया है। हालाँकि नवधा भक्ति को तुलसीदास ने अपने ढंग से अभिव्यक्ति दी है। 'रामचरितमानस' के अरण्यकांड में राम शबरी को नवधा भक्ति की सीख देते हुए कहते हैं :

नवधा भगति कहऊँ तोही पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि राति मम कथा प्रसंगा।।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संग अधिक करि लेखा।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।

यहाँ तुलसीदास ने संतों के साथ सत्संग, रामकथा के प्रति अनुराग, गुरु सेवा, छल रहित मन-भावना से राम गुणगान, राम मंत्र का जाप, वेद मार्ग का अनुसरण, कर्म में शील और सज्जनता, जगत को राममय मानते हुए संतों का आदर, खुद संतोष धारण करना, दूसरों का दोष न देखना तथा हर्ष और विषाद में एक-सा भाव रखते हुए राम में भरोसा को नवधा भक्ति के विभिन्न तत्वों के रूप में चिह्नित किया है। नवधा भक्ति के इन तत्वों को तुलसीदास के काव्य में जगह-जगह विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति दी गई है। शबरी प्रसंग में उसका समन्वित रूप प्रस्तुत किया गया है।

नाम जप को तुलसीदास ने भक्ति की प्रविधि के रूप में सर्वाधिक महत्व दिया है। वे नाम की महिमा को सगुण और निर्गुण से ऊपर मानते हैं। उनके अनुसार कलियुग में यह कल्पतरु के समान है। 'रामचरितमानस' के बालकांड में नाम महिमा का विस्तार से वर्णन है तथा उत्तरकांड में भी इसका जिक्र आया है। 'कवितावली' में तुलसीदास कलियुग के दुखों को

दूर करने में ज्ञान, वैराग्य, तप, तीरथ सभी को असमर्थ मानते हुए एकमात्र नाम जप को सुखप्रदायी मानते हैं :

न मिटै भवसंकटु, दुर्घट है तप, तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलिमें न बिरागु, न ग्यानु कहूँ, सबु लागत फोकट झूठ-जटो।
नटु ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक-कौतुक-ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुखु चाहिअ तौ, रसनाँ निसिबासर रामु, रटो।

तुलसीदास की भक्ति के संदर्भ में रेखांकित करने योग्य एक महत्वपूर्ण पक्ष है– अहंकार का त्याग। पूरे 'रामचरितमानस' में मोह, अहंकार, दंभ के विभिन्न संदर्भ आए हैं जिसका शमन प्रभु ने किया है। नारद-मोह प्रसंग, सती-मोह प्रसंग, गरुड़-मोह प्रसंग, काकभुशुंडि-मोह प्रसंग इसी को इंगित करते हैं। काकभुशुंडि गरुड़ से कहते हैं कि प्रभु राम किसी के अहंकार को रहने नहीं देते क्योंकि यह समस्त शोक और क्लेश का कारण है :

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ।।
संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना।।

बोध प्रश्न

4. निम्नलिखित प्रश्नों के आगे सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाइए।

(क) तुलसीदास के काव्य में ईश्वर के निर्गुण स्वरूप की अस्वीकृति है। ( )

(ख) तुलसीदास ने शिव तथा राम की भक्ति में समन्वय का प्रयास किया है। ( )

(ग) दार्शनिक स्तर पर तुलसीदास ने शंकर के अद्वैतवाद का विरोध किया है। ( )

(घ) 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने शबरी को नवधा भक्ति की शिक्षा दी है।
( )

(ङ) तुलसीदास ने ज्ञानमार्ग से ज्यादा भक्तिमार्ग को वरेण्य माना है। ( )

5. तुलसीदास की शरणागति भक्ति का उल्लेख पाँच पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

6. तुलसीदास के सगुण तथा निर्गुण संबंधीमत पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 तुलसीदास की कविता का सामाजिक-राजनीतिक पक्ष

यद्यपि तुलसीदास प्रधान रूप से भक्त कवि हैं, व्यक्तिगत जीवन में वैरागी हैं, लेकिन अपने समय की सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों के प्रति सचेत हैं। एक ओर अगर वे ऐसी कविता को ही वरेण्य मानते हैं जिसमें राम का नाम हो वहीं कविता के लिए उनका एक आदर्श यह भी है कि वह सबके लिए हितकारी हो, 'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।' **लोकमंगल उनके काव्य का प्रमुख तत्व है।** उनकी नजर में रघुनाथ की जिस कथा को वे कह रहे हैं वह कलियुग के पापों को हरने वाली तथा लोगों का कल्याण करने वाली है, 'मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।' मध्यकालीन कवियों में तुलसीदास अकेले कवि हैं जिन्होंने न सिर्फ जन विमुख सामंती राजकीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों को प्रश्नांकित किया, बल्कि उसके बरक्स 'रामराज्य' के रूप में एक बेहतर व्यवस्था का विकल्प भी प्रस्तुत किया। उनकी दृष्टि आम लोगों की दीनता और दुर्दशा की ओर है। तुलसीदास ने अपने जीवन में अकाल और महामारी को देखा था। इन दोनों प्रतिकूलताओं के बीच आम लोगों की बेबस स्थिति को उन्होंने अपने काव्य में दर्ज किया है। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ रहा है, अन्न के अभाव में लोग भूखों मर रहे हैं, 'कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।' शंकर के शहर काशी में आई महामारी में लोग उसी प्रकार मर रहे हैं जैसे जल में वास करने वाले जीव-जंतु माजा नामक बीमारी के कारण मर जाते हैं। महामारी से त्रस्त लोगों के लिए न तो राजा को चिंता है और न ही कोई देवता सहायक हो रहे हैं। तुलसी राम से तथा राम के दूत हनुमान से लोगों की रक्षा की प्रार्थना करते हैं :

संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर

बिकल, सकल, महामारी माजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगात जल-थल मीचुमई है।।
देव न दयाल, महिपाल न कृपालचित,
बारानसीं बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज! पाहि कपिराज रामदूत!
समहूकी की बिगरी तुहीं सुधारि लई है।।

कलिकाल के रूप में तुलसीदास ने अपने समय की विद्रूपता पर व्यापक रूप से विचार किया है। इस संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है, ''... तुलसीदास जब कलियुग का उल्लेख करते हैं तब वे पौराणिक कलियुग का उल्लेख नहीं करते बल्कि अपनी आँखों देखे उस समाज का वर्णन करते हैं जो पाप, ताप, दोष और दरिद्रता से पीड़ित है।'' तुलसीदास ने कलिकाल का वर्णन 'रामचरितमानस' तथा 'कवितावली'– दोनों के उत्तरकांड में किया है। 'दोहावली' में भी इससे संबंधित कुछ दोहें हैं। 'रामचरितमानस' में इसका वर्णन काकभुशुंडि गरुड़ के समक्ष करते हैं। इस वर्णन में बहुपंथ एवं दंभ के उभार, आश्रम व्यवस्था में आई गिरावट, वेद मार्ग से विचलन, गुरु के प्रति शिष्यों में आदर का न होना, संतान का अभिभावक के प्रति उपेक्षा का भाव, मनमाना आचरण, पर स्त्री के प्रति असक्ति का भाव आदि को कलियुग की प्रवृत्ति के रूप में दर्शाया गया है। यहाँ मुख्य रूप से तुलसीदास ने धर्म विरुद्ध, मर्यादा विरुद्ध आचरण तथा लोभादि प्रवृत्ति के समाज में प्रबल होने की वस्तुस्थिति को अभिव्यक्त किया है। तुलसीदास वर्णाश्रम व्यवस्था के टूटने तथा वेद के अनुशासन की अवज्ञा पर दुखी होते हैं :

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी।।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।।

तुलसीदास द्वारा वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थन के संदर्भ में रामजी तिवारी ने लिखा है, ''यह सच है कि गोस्वामी जी वैदिक काल से चली आ रही शास्त्र सम्मत और श्रुतिसमर्थित वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे किंतु उसका आधार जाति न होकर गुण-कर्म विभाग ही था।'' रामजी तिवारी की इस मान्यता की पुष्टि तुलसी-साहित्य के विभिन्न संदर्भों से होती है। तुलसीदास जहाँ कहीं किसी के आचरण में गिरावट देखते हैं उसकी ओर संकेत करते हैं, इसमें वे जन्मना जाति की श्रेष्ठता का आग्रह नहीं रखते। इस तथ्य की पुष्टि तुलसीदास के इस कथन से होती है, 'द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।' जातिगत भेद-भाव के प्रति तुलसीदास ने अपना प्रतिरोध अन्यत्र भी प्रकट किया है। 'रामचरितमानस' के अरण्यकांड में शबरी जब अपने को नीच जाति की बताती है तो राम जाति, कुल, धन, बल आदि सभी चीजों से ऊपर भक्ति को बताते हैं :

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।।

'कवितावली' में तुलसीदास कहते हैं कि न मेरी कोई जाति है, न मैं किसी की जाति-पाँति चाहता हूँ। न मैं किसी के काम का हूँ, न कोई मेरे काम का है। मेरा लोक-परलोक राम के हाथ है और मुझे उन्हीं का भरोसा है :

मेरें जाति-पाँति न चहौं काहूकी जाति-पाँति,
मेरे कोऊ कामको न हौं काहूके कामको।
लोकु परलोकु रघुनाथही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसीकें एक नाम को।।

'कवितावली' के कलिकाल वर्णन में तुलसीदास ने अपनी सामाजिक दृष्टि को आम लोगों की दुर्दशा और वंचना से जोड़ दिया है। समाज में आर्थिक गतिविधियाँ ठप्प हो गई हैं। जीविका विहीन स्थिति में लोग बेबसी में एक दूसरे को देख रहे हैं :

खेती न किसानको, भिखारीको न भीख, बलि,
बनिकको बनिज, न चाकरको चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई, का करी?'

ऐसा समय आ गया है कि मजदूर, किसान, व्यापारी, भिखारी, चारण, नौकर, चोर सभी सिर्फ पेट पालने के लिए पढ़ रहे हैं; पर्वत और वन में शिकार के लिए घूम रहे हैं। ऊँचे-नीचे कार्य कर रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि पेट की अग्नि समुद्र की अग्नि से भी प्रचंड होती है :

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेटको पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेटकी।।
ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागितें बड़ी है आगि पेटकी।।

कलियुग में विवेकहीनता का बोलबाला हो गया है। लोग राजहंस के बच्चे को हटाकर उल्लू पाल रहे हैं। अर्थात गुण का अनादर कर रहे हैं। लोग ज्ञान के अभिमान में डूबे हुए हैं। झूठे मुनि अपने को ईश्वर कहलवाना चाहते हैं।

कलियुग की विद्रूपता के साथ ही तुलसीदास ने राज्य-व्यवस्था के कपटी चरित्र को भी उजागर किया है। इस कठिन समय में राजा दयाहीन हो गया है तथा उसका समाज अर्थात कर्मचारी छली हो गए हैं, ''कालु कराल, नृपाल कृपाल न, राजसमाजु, बड़ोई छली है।' राजा प्रजा संबंध पर तुलसीदास ने व्यापक रूप से विचार किया है। 'दोहावली' में तुलसीदास ने

कर-व्यवस्था एवं दंड-व्यवस्था– दोनों पर टिप्पणी की है। उनका मानना है कि कलियुग में जिनके हाथ में शासन है उनमें दंड का विवेक नहीं है। राजा को चाहिए कि राजकाज में साम, दाम, भेद का भी इस्तेमाल करे पर विवेकहीन सत्ता लोगों को सिर्फ कठोर दंड दे रही है :

गोंड़ गवाँर नृपाल महि जमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल।।

अपने समय की कठोर दंड-व्यवस्था के विरुद्ध वे रामराज्य की सुव्यवस्था तथा उसमें दंड के लोप का आदर्श प्रस्तुत करते हैं :

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज।।

अर्थात रामचंद्र के राज में दंड संन्यासियों के हाथ में तथा भेद सिर्फ नर्तक के समाज (उसकी कला में) में ही बचा हुआ है। जीत शब्द मन को जीतने के संदर्भ में सुनाई देता है।

रामराज्य के रूप में तुलसीदास एक आदर्श समाज की परिकल्पना पेश करते हैं। कलिकाल वर्णन में जिस विकल्पहीनता, दंभ, लोलुपता, कपट, व्यवस्थागत दुरावस्था का जिक्र उन्होंने किया है, रामराज्य की परिकल्पना में एक तरह से उन सबका समाधान प्रस्तुत किया है। यह ऐसा राज्य है जिसमें सभी प्रकार की विषमता का अंत हो गया है, कोई किसी से द्वेष नहीं रखता, 'बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई।।' लोग वर्णाश्रम धर्म तथा वेद पंथ का अनुसरण करते हैं। कोई दरिद्र और दुखी नहीं है। सभी दंभ रहित हैं। उस समय की भोगवादी जीवन शैली (राजा तथा सामंतों के यहाँ हरम आदि) के बरक्स तुलसीदास ने एकनारी ब्रत की उपस्थिति रामराज्य में दिखलाई है। यहाँ सागर भी अपनी मर्यादा में रहते

हैं, 'सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।।' दरअसल सागर का मर्यादा में रहने की बात कर तुलसीदास ने रामराज्य में समर्थ व्यक्तियों के द्वारा अनुशासन के पालन की वस्तुस्थिति को दर्शाया है। (ध्यान देने की बात है कि अयोध्या में जहाँ राम का शासन हुआ उसकी सीमा से लगा कोई सागर नहीं है।) रामराज्य की परिकल्पना में जिस सुव्यवस्था की उपस्थिति तथा सामंती व्यवस्था और जीवन संस्कृति का प्रतिकार किया गया है वह अपने समय में एक अनूठा हस्तक्षेप है। तुलसीदास के महत्व को रेखांकित करते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है, ''... ऐसा नहीं है कि तुलसी सामंतवादी व्यवस्था के स्थान पर किसी जनवादी या समाजवादी व्यवस्था की कल्पना करते हैं। 16वीं-17वीं शताब्दी में कोई भी व्यक्ति कहीं भी समाजवादी व्यवस्था की कल्पना नहीं कर सकता था। तुलसी सामंती व्यवस्था की त्रुटियाँ ही देख सकते थे, प्रजा के सुखी और राजा के प्रजापालक रूप की ही कल्पना कर सकते थे। उन्होंने रामराज्य के रूप में यही कल्पना की थी।''

तुलसीदास का जो सामाजिक आदर्श है उसमें दीन-हीन, आभिजात्य जीवन-स्थिति से बाहर के लोगों के लिए प्रेम, उनके कष्टों के प्रति सहानुभूति का भाव छलकता है। लंका से लौटने के बाद राम बंदर-भालुओं को अपना मित्र बताते हैं, 'ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भय समर सागर कहँ बेरे।' तुलसीदास दूसरों के हित के लिए किए गए कार्य से बड़ा कोई कार्य नहीं मानते, 'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।' जब वे आम लोगों की ओर देखते हैं उनकी दृष्टि पूरी तरह ययार्थवादी हो जाती है। वे दरिद्रता से बड़ा कोई दुख नहीं मानते, 'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं।'

वर्णाश्रम, कलिकाल, रामराज्य, दरिद्रता पर विचार करने के साथ तुलसीदास सामाजिक-पारिवारिक मर्यादा पर बहुत जोर देते हैं। रामकथा में भरत का त्याग, पिता के वचन को

निभाने के लिए राम द्वारा वन गमन को सहर्ष स्वीकारना, राम का कैकेयी के साथ आदरपूर्ण और कटुता रहित व्यवहार, राम का गुरुओं के प्रति आदर आदि प्रसंग तुलसीदास के मर्यादा के प्रति आग्रह को दर्शाते हैं।

तुलसीदास के काव्य की एक महत्वपूर्ण विशिष्टता है– लोक जीवन का चित्रण। 'रामलला नहछू', 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल' आदि रचनाएँ तो पूरी तरह लोक व्यवहार, रीति रिवाज को समर्पित हैं। 'रामचरितमानस' में भी राम का बचपन, राम सहित चारों भाइयों का विवाह, शिव-पार्वती विवाह आदि अवसर पर लोक जीवन की गहनता से अभिव्यक्ति हुई है।

बोध प्रश्न

7. तुलसीदास के रामराज्य संबंधी विचारों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

8. तुलसी के कलिकाल वर्णन पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.5 तुलसीदास की भाषा और काव्य सौंदर्य

तुलसीदास जिस प्रकार अपनी भक्ति में विनयशील हैं उसी प्रकार की विनयशीलता और संकोच उनमें अपनी कवित्व क्षमता के प्रति भी है। 'रामचरितमानस' के बालकांड में अपने इस संकोच को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है :

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना।।
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।।
कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें।।

अर्थात भावों को व्यक्त करने के लिए अनेक शब्द हैं, उनके अर्थ को समझते हुए भावानुकूल शब्द चयन की जिम्मेवारी कवि पर होती है। कविता को अनेक प्रकार से सजाया जाता है; छंद और प्रबंध की तमाम कोटियाँ हैं; उनके अलग-अलग मानदंड हैं। रस और भाव के अनेक भेद हैं। कविता में विभिन्न प्रकार के गुण और दोष होते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उनमें काव्य-रचना के इन व्यवहारों का विवेक नहीं है। वे केवल अनुभूति के सत्य को व्यक्त करने का दावा करते हैं। लेकिन उनकी कविता से गुजरने पर पता चलता है कि काव्य की चारुता और उत्कर्ष के लिए जो भी मानदंड उस समय तक विकसित हुए थे, उन सभी का सुंदर और संयमपूर्ण समायोजन तुलसीदास की कविता में हुआ है। यही कारण है कि रस, अलंकार, शब्द प्रयोग, रूपगत विविधता के बावजूद उनमें कहीं भी शिल्पगत पच्चीकारी दिखाई नहीं देती। अनेक रीतिवादी कवियों की तरह उनकी कविता में भाषागत-शिल्पगत आडंबर नहीं है।

भाषा के स्तर पर तुलसीदास उस समय हिंदी में काव्य भाषा के रूप में प्रचलित अवधी और ब्रजभाषा– दोनों में निष्णात हैं। अवधी तुलसीदास की अपनी भाषा थी, लेकिन ब्रजभाषा में भी उन्होंने अवधी के समान ही भाषागत दक्षता का परिचय दिया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा श्यामसुंदर दास– दोनों का मानना है कि इन दोनों भाषाओं में तुलसीदास सर्वश्रेष्ठ हैं। ब्रजभाषा तथा अवधी पर तुलसीदास के अधिकार को रेखांकित करते हुए श्यामसुंदर दास ने लिखा है, ''इन दोनों भाषाओं पर उनकी रचनाओं में इतना अधिकार दिखाई देता है कि जितना स्वयं सूरदासजी का ब्रजभाषा पर और जायसी का अवधी पर न था।''

तुलसीदास की कुल बारह रचनाओं में से छह रचनाएँ अवधी में हैं तथा अन्य छह ब्रजभाषा में हैं। अवधी में लिखी गई रचनाएँ हैं– 'रामलला नहछू', 'रामाज्ञाप्रश्न', 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल', 'बरवैरामायण' तथा 'रामचरितमानस'; जबकि ब्रजभाषा में लिखी गई रचनाएँ हैं– 'वैराग्य संदीपनी', 'विनय-पत्रिका', 'गीतावली', 'दोहावली', 'कृष्णगीतावली' तथा 'कवितावली'। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में इन दोनों भाषाओं को निखारा है। जायसी ने ब्रजभाषा के ठेठ रूप का इस्तेमाल किया है, पर तुलसीदास ने तत्सम शब्दों के साथ अवधी का प्रयोग कर भाषा को कलात्मक स्वरूप प्रदान किया। उदाहरणस्वरूप :

जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि।।

तुलसीदास की यही विशिष्टता ब्रजभाषा के संबंध में देखी भी जा सकती है। 'विनय-पत्रिका' की इन पंक्तियों को देखिए :

श्रुति-गुरु-साधु-समृति-संमत यह दृश्य असत दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति, बिपति सकै न टारी।।

काव्य भाषा के रूप में अवधी तथा ब्रजभाषा का प्रयोग करने के साथ ही तुलसीदास ने विभिन्न भाषाओं के लोक प्रचलित शब्दों से अपनी भाषा को समृद्ध किया है। उदाहरणस्वरूप :

साहिब उदास भये दास खास खीस होत
मेरी कहा चली? हौं बजाय जाय रह्यौ हौं।।

यहाँ अरबी के 'साहिब' शब्द का तुलसीदास ने ब्रजभाषा के साथ सहजतापूर्ण प्रयोग किया है।

तुलसीदास अपने समय-समाज के लोक जीवन से गहरे रूप से जुड़े हुए थे। इस कारण जन-व्यवहार में रचे बसे मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग उनकी भाषा की एक प्रमुख विशिष्टता है। उदाहरणस्वरूप :

तुलसी उराउ होत रामको सुभाउ सुनि,
को न बलि जाइ, न बिकाइ बिनु मोल को।

तुलसीदास की भाषा की सर्वप्रमुख विशेषता है– भाषा का अलंकृत प्रयोग। यद्यपि तुलसीदास ने कविताओं में अलंकार का सायास प्रयोग नहीं किया है, लेकिन अलंकार का सौंदर्य उनके काव्य में सहज रूप से सर्वत्र विद्यमान है। वैसे तो तुलसीदास की कविताओं में अनेक प्रकार के अलंकारों की मौजूदगी है, परंतु अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि की योजना प्रमुखता से हुई है। अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति से भाषा में सौंदर्य पैदा किया जाता है। तुलसीदास के काव्य में अनुप्रास बारंबार दिखाई देता है :

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।

× ×

काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि।।

उपमा अलंकार में दो वस्तुओं के बीच साधर्म्य दिखाया जाता है। उत्प्रेक्षा में उपमेय में उपमान की संभावना दर्शाई जाती है। रूपक में उपमेय पर उपमान के आरोप के द्वारा अभेद प्रदर्शित किया जाता है। तुलसीदास के काव्य में इन तीनों अलंकारों का प्रमुखता से प्रयोग हुआ है। यथा :

उपमा : सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबनि पद कृपाधाम के।।

उत्प्रेक्षा : सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू। मनहूँ दीन मनिहीन भुअंगू।
सरूष समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु धरीं गनि लेई।।

(राजा दशरथ के सभी अंगों में जलन हो रही थी और ओठ सूख गए थे, मानो साँप मणि को खोकर दुखी हो रहा हो। उनके पास क्रोधित कैकेयी ऐसी दीख रही थी मानो मृत्यु दशरथ के जीवन की अंतिम घड़ी को गिन रही हो।)

रूपक : कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा।।

(शरीर लकड़ी है और मनोकामनाएँ (लालसाएँ) कीड़ा है। ऐसा कौन धैर्यवान है जिसके शरीर में यह घुन (कीड़ा) न लगा हो।

तुलसीदास की काव्य भाषा में विभिन्न संदर्भों में प्रतीकात्मकता का भी संयोजन हुआ है। तुलसीदास ने राम के प्रति अपने प्रेम की अनन्यता को दिखाने के लिए चातक और पपीहे का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है :

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख।।

(मेघ (वर्षा) राम की अनुकंपा है और तुलसीदास की भक्ति चातक की प्रतीक्षा। वे अपने आराध्य के प्रति मन में मलिनता नहीं लाते। राम के प्रति उनके प्रेम की माप-तौल नहीं हो सकती है।)

भाषा की अब तक उल्लिखित विशिष्टताओं के अतिरिक्त तुलसीदास के काव्य सौंदर्य की एक प्रमुख विशिष्टता उनके काव्य-रूप की विविधता में भी निहित है। उन्होंने प्रबंध एवं मुक्तक– दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं। 'रामचरितमानस' महाकाव्य है तो 'रामलला नहछू', 'जानकी मंगल' और 'पार्वती मंगल' खंडकाव्य हैं। 'दोहावली' 'कवितावली', 'विनय-पत्रिका' आदि मुक्तक काव्य हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान' को तुलसीदास की प्रमुख विशिष्टता के रूप में रेखांकित किया है। तुलसीदास के काव्य में विभिन्न रसों की समुचित योजना की गई है। उदाहरणस्वरूप राम-कौशल्या प्रसंग में वात्सल्य रस, लक्ष्मण शक्ति प्रसंग में करुण रस, नारद-मोह प्रसंग में हास्य रस, शिव-पार्वती विवाह तथा पुष्पवाटिका प्रसंग में श्रृंगार रस की योजना देखी जा सकती है। तुलसीदास ने श्रृंगार, खासकर संयोग श्रृंगार का वर्णन बहुत ही मर्यादित ढंग से किया है।

सारतः हम कह सकते हैं कि तुलसीदास अपनी भक्ति पद्धति एवं सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण के साथ भाषा एवं काव्य सौंदर्य की दृष्टि से भी अद्वितीय कवि हैं।

6.6 तुलसीदास की कविता का वाचन और आस्वादन

कविता का वाचन

देखिए– परिशिष्ट

कविता का आस्वादन

- **सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।...**

संदर्भ

प्रस्तुत काव्यांश 'रामचरितमानस' के बालकांड से लिया गया है। पार्वती राम के संदर्भ में शिव से पूछती हैं कि जो राजपुत्र हैं, स्त्री के विरह में व्याकुल हैं, वह ब्रह्म कैसे हैं? पार्वती के प्रश्न के समाधान के क्रम में शिव सगुण और निर्गुण के अभेद पर प्रकाश डालते हैं।

व्याख्या

शिव कहते हैं कि मुनि गण, ज्ञानी, वेद और पुराण सभी की यही मान्यता है कि सगुण और निर्गुण में वास्तव में कोई भेद नहीं है। ब्रह्म मूलतः निर्गुण, निराकार और अनिर्वचनीय है जो अपने भक्तों के प्रेम के कारण सगुण रूप में प्रकट होता है, अर्थात उनके दुखों के निवारण के लिए अवतार लेता है। जो निर्गुण है वह सगुण कैसे है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए वे कहते हैं कि जैसे पानी और बर्फ में तत्वतः कोई भेद नहीं है वैसे ही सगुण और निर्गुण दोनों एक ही है। जिसका नाम भ्रम रूपी अंधकार को मिटाने के लिए सूर्य रूपी प्रकाश के समान है वह स्वयं मोहग्रस्त कैसे हो सकता है? राम सत्य और आनंदस्वरूप सूर्य हैं, वहाँ लेशमात्र मोह नहीं व्यापता है। वे सहज ही प्रकाशवान हैं, वहाँ विज्ञान रूपी प्रातः काल नहीं

होता है। प्रातः काल की ज्योति तो वहाँ होती है जहाँ पूर्व में रात्रि का अंधकार रहा हो। अर्थात दिन और रात का क्रम, अंधकार और प्रकाश का क्रम, ज्ञान और अज्ञान का क्रम इस जगत के ज्ञान-विज्ञान का सत्य है। राम इन सबसे परे हैं। सुख, दुख, ज्ञान, अज्ञान, अभिमान– यह सब जीव का स्वभाव है। परम आनंद स्वरूप राम इन सबसे ऊपर हैं। इसे सारा संसार जानता है। वे प्रसिद्ध पुरुष हैं और प्रकाश के पुंज हैं। वे सबके स्वामी हैं। राम की महिमा का बखान कर, रघुकुल मणि रामचंद्र जी को अपना स्वामी मानते हुए शिव जी ने उन्हें प्रणाम किया।

विशेष

(i) राम के दिव्य रूप का वर्णन किया गया है।

(ii) सगुण एवं निर्गुण में समन्वय स्थापित किया गया है।

(iii) भाषा अवधी है।

- **संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर ...**

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यांश 'कवितावली' के उत्तरकांड से लिया गया है। इस पद्यांश में तुलसीदास काशी में आई महामारी से रक्षा के लिए राम तथा उनके दूत हनुमान से प्रार्थना कर रहे हैं।

व्याख्या

भगवान शंकर के नगर काशी में महामारी का प्रकोप छाया हुआ है। महामारी की परिस्थितियाँ ऐसी हैं मानो काशी एक तलाब बन गया है, नगर के स्त्री-पुरुष इस तालाब के जीव हैं और

ये (जलीय) जीव माजा नामक बीमारी से बेचैन होकर, घबराकर इधर-उधर भागते हैं और अंततः मर जाते हैं। (माजा तालाब आदि में फैलने वाली एक बीमारी है जिससे जलीय जीवों की मृत्यु हो जाती है।) महामारी के प्रकोप से जल और थल में अर्थात चारों ओर मौत ही मौत दिखाई दे रही है। न देवता दया दिखा रहे हैं और न शासक की ओर से महामारी से बचाव का कोई प्रयास किया जा रहा है। वाराणसी में अनीति बढ़ रही है, तुलसीदास के काव्य में इसके अनेक संकेत मौजूद हैं। समाज, राजनीति, धर्म, मनुष्य के आचरण सब जगह अनीति, नीति विरूद्ध कर्म और व्यवहार हो रहा है, कुल मिलाकर अराजकता का माहौल है। कवि प्रभु राम से रक्षा की प्रार्थना करता है और फिर हनुमान जी से। हनुमान जी से प्रार्थना करते हुए वह कहता है कि जब राम के ऊपर प्रतिकूलता आई, वे संकट में पड़े तब आपने ही समाधान निकाला था। उसी प्रकार काशी में आए इस संकट से निजात दिलाइए।

विशेष

(i) इन पंक्तियों के माध्यम से तुलसीदास का अपने देशकाल से जुड़ाव व्यक्त हुआ है।

(ii) भाषा अवधी है।

(iii) रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

- **सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुतु, सो हितु मेरो। ...**

भावार्थ

तुलसीदास सांसारिक माया-मोह का त्याग कर राम के प्रति पूर्णतः समर्पित भक्त को ही अपना सब कुछ मानते हुए कहते हैं कि वही मेरी माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र और हितैषी

है। वही मेरा सगा, मित्र, सेवक, गुरु, देवता तथा मालिक है। वे कहते हैं बढ़ा-चढ़ाकर कितना कहूँ, ऐसा व्यक्ति मुझे प्राण के समान प्रिय है।

- **मातु पिताँ जग जाइ तज्यो बिधिहूँ न लिखी कछु भाल भलाई। ...**

भावार्थ

तुलसीदास अपने बचपन की दीन-हीन स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि जन्म के बाद माता-पिता ने त्याग दिया। ब्रह्मा ने भी भाग्य में कुछ अच्छा (भलाई) नहीं लिखा। तुलसीदास स्वयं को कोसते हुए कहते हैं कि मैं नीच, अनादर का पात्र, कायर, खाने के लिए कुत्ते की तरह ललचाने वाला था; जब मैंने श्रीरामचंद्र का स्वभाव सुनकर अपने पेट की सारी बातें उनसे कह दीं फिर मेरे (तुलसीदास के) सांसारिक और पारलौकिक सुख को पूरा करने में प्रभु ने कोई कमी बाकी नहीं रखी।

- **न मिटै भवसंकटु, दुर्घट है तप, तीरथ जन्म अनेक अटो। ...**

भावार्थ

इस संसार में कभी कष्ट दूर नहीं हो सकता। तपस्या करना अत्यंत कठिन है। तीर्थों में भटकने से कुछ हाथ नहीं आता क्योंकि कलियुग में न कहीं वैराग्य है, न ज्ञान है; सभी ओर झूठ और पाखंड दिखाई देता है। अतः नट की तरह पेटरूपी बुरे पिटारे से कौतुक मत करो। तुलसीदास कहते हैं कि यदि हमेशा सुख चाहते हो तो अपनी जिह्वा से दिन-रात राम का नाम रटो।

- **ईसनके ईस, महाराजनके महाराज, ...**

भावार्थ

तुलसीदास प्रभु राम की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि आप ईश्वरों के भी ईश्वर, महराजाओं के महाराज, देवों के देव तथा प्राणों के भी प्राण हैं। आप काल के भी काल, महाभूतों के महाभूत, कर्म के भी कर्म तथा कारण के भी कारण हैं। आप ऐसे शील के समुद्र और करुणा के भंडार हैं कि जिसके आदि अंत को वेद भी नहीं जानता; वैसे आप तुलसी के लिए सुलभ हैं। आपकी महिमा अंनत है। आपकी वाणी का आदि अंत नहीं है। इतने प्रभुत्व के बावजूद आप शरणागत की रक्षा के लिए हमेशा सावधान अर्थात तत्पर रहते हैं।

- **रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनहारी।। ...**

भावार्थ

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि हे पर्वतराज (हिमालय) की पुत्री! राम की कथा सुंदर ताली के समान है जो मन में स्थित संशय रूपी पक्षी को उड़ा देता है। यह कलियुग रूपी वृक्ष को काटने वाली कुल्हाड़ी के समान है। मुझे राम का नाम, उनके गुण, उनका चरित्र बहुत प्रिय है। उनके जन्म और कर्म का वेदों में अनेक प्रकार से बखान किया गया है। जिस प्रकार भगवान रामचंद्र अनंत हैं, उसी प्रकार उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनंत है। फिर भी आपके अत्यंत प्रेम को देखकर जैसी मेरी समझ है और जैसा मैंने सुना है, आपको बता रहा हूँ। हे उमा (पार्वती)! आपका प्रश्न सहज ही सुंदर लगने वाला, सुख देने वाला तथा संत सम्मत है। यद्यपि आपने मोह के वशीभूत होकर ऐसा कहा है कि राम कौन हैं? फिर भी आपकी एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी कि वे राम कोई दूसरे हैं जिनके गीत वेद गाते हैं

और मुनि जिनका ध्यान लगाते हैं। जो नीच मनुष्य ऐसा कहता और सुनता है वह मोहरूपी प्रेत से ग्रस्त है। प्रभु के चरणों से विमुख ऐसे लोग झूठ-सच कुछ भी नहीं जानते।

- **अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी।।**

भावार्थ

ऐसे लोग जो अज्ञानी, मूर्ख, अंधे और अभागे हैं। जिनके मनरूपी दर्पण पर भोग-विलास का मैल जमा हुआ है; जो बड़े व्यभिचारी, छली और कुटिल हैं तथा जिनका संतों के समाज से स्वप्न में भी संपर्क नहीं रहा है; जिन्हें वास्तविक लाभ-हानि की समझ नहीं है, वे ही वेद-असम्मत बातें करते हैं। जिनका हृदयरूपी दर्पण गंदा है और जिनमें सत्य को देखने की क्षमता (नयन बिहीना) नहीं है ऐसे बेचारे राम को कैसे पहचान पाएँगे। जिनके अंदर सगुण-निर्गुण का विवेक नहीं है; जो अनेक मनगढ़ंत बातें किया करते हैं; जो प्रभु के माया के कारण संसार में भटकते रहते हैं, ऐसे लोगों के लिए कुछ भी कहना असंभव नहीं है। अर्थात वे राम के संदर्भ में भी संशय कर सकते हैं। ऐसे लोग जो नशे में चूर हैं, जिन्हें वायुरोग है, भूतों के वश में है, वे कोई भी बात विचार कर नहीं बोलते। जिन्होंने महामोह की सुरा पी रखी है, उनके कहे पर ध्यान नहीं देना चाहिए। इन बातों पर अपने हृदय से विचारकर संदेह छोड़ दो, और हे पार्वती अब भ्रम रूपी अंधकार को मिटा देने वाले सूर्य-किरण समान मेरी बातों को सुनो।

- **निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी।। ...**

भावार्थ

अज्ञानी मनुष्य अपने भ्रम का आरोप प्रभु राम पर करते हैं। अर्थात अज्ञानता के कारण राम के वास्तविक स्वरूप को पहचान नहीं पाते। प्रभु पर मोह का आरोप करना वैसा ही है जैसे आकाश में सूर्य के उपर बादल का पर्दा देखकर कोई यह समझे कि बादलों ने सूर्य को ढक लिया है। कोई अपनी आँख में ऊँगली लगाकर देखता है तो उसे दो चंद्रमा दिखाई देते हैं। हे पार्वती! राम के संबंध में संशय करना वैसा ही है जैसे आकाश में अंधकार, धुएँ एवं धूल को देखना। विषय (भोग-विलास संबंधी), इंद्रियाँ, जीव सब एक की सहायता से ही चेतन होते हैं। इन सबका परम प्रकाशक अयोध्या नरेश राम हैं जो वास्तव में अनादि हैं। संसार प्रकाश्य है और रामचंद्र इसके प्रकाशक हैं। उनके ही कारण जड़ माया भी वास्तविक प्रतीत होती है। सीप में चाँदी का और सूर्य किरण में पानी (मृग मरीचिका) का भ्रम यद्यपि तीनों कालों में झूठ है पर कोई इसे हटा नहीं सकता।

- **एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई। ...**

भावार्थ

इसी प्रकार संसार भगवान पर निर्भर है। यद्यपि यह (मोह जनित भ्रम) झूठ है फिर भी दुख देता है; वैसे ही जैसे कोई स्वप्न में हो, उसका सर कोई काट ले, फिर वह व्यक्ति जब तक जग नहीं जाएगा उसका दुख दूर नहीं होगा। हे पार्वती! रघुनाथ जी की कृपा से यह भ्रम दूर हो जाता है। उसका कोई आदि अंत नहीं है। बुद्धि से अनुमान कर वेदों में ऐसा लिखा गया है कि वह बिना पैर के चलता है, बिना कान के सुनता है, अनेक प्रकार के काम वह

हाथ के बिना की करता है, मुँह के बिना वह सभी रसों का भोक्ता है, आवाज के बिना भी वह बहुत बड़ा वक्ता है। वह शरीर के बिना भी स्पर्श कर सकता है और आँख न होते हुए भी देखता है, बिना सूँघे ही सभी प्रकार की गंध को ग्रहण करता है। इसी प्रकार वह सभी प्रकार का अलौकिक कार्य करता है। उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है। वेद और ज्ञानी जिसके बारे में ऐसा गाते हैं और ध्यान धरते हैं वही दशरथ पुत्र, भक्तों का हित करने वाला, अयोध्या के राजा भगवान राम हैं।

6.7 सारांश

- तुलसीदास सगुण भक्ति की राम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं।
- तुलसीदास का जन्म 1532 ई. में तथा मृत्यु 1623 ई. में हुई।
- इनकी रचनाओं की संख्या के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों में मतैक्य नहीं है, फिर भी इनकी कुल बारह रचनाओं की प्रामाणिकता के संदर्भ में अब सर्वस्वीकृति दिखाई देती है। ये रचनाएँ हैं– 'वैराग्य संदीपनी', 'रामाज्ञाप्रश्न', 'रामलला नहछू', 'जानकी मंगल', 'रामचरितमानस', 'पार्वती मंगल', 'गीतावली', 'कृष्णगीतावली', 'दोहावली', 'बरवै रामायण', 'विनय-पत्रिका' तथा 'कवितावली'।
- तुलसीदास ने ईश्वर के सगुण अवतारी रूप को स्वीकार करते हुए उसके निर्गुण रूप से कोई विरोध व्यक्त नहीं किया है, बल्कि दोनों के बीच समन्वय किया है।

- सगुण और निर्गुण में समन्वय के साथ ही उन्होंने शिव और राम की भक्ति के बीच भी समन्वय को दर्शाया है। इसी तरह दार्शनिक स्तर पर अद्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद– दोनों की उनमें उपस्थिति है।
- निजी तौर पर उन्होंने शरणागति तथा दैन्य भाव की भक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया है।
- सामाजिक स्तर पर लोकमंगल की धारणा उनके काव्य का केंद्रीय तत्व है। अपने काव्य में वे जनता की दीन-हीन दशा का चित्रण करते हैं तथा राजा को उसके कर्त्तव्य की याद दिलाते हैं। आदर्श राज्य के रूप में वे रामराज्य की परिकल्पना प्रस्तुत करते हैं।
- उन्होंने अपने समय की दोनों काव्यभाषाओं– अवधी तथा ब्रजभाषा में काव्य-रचना की। काव्य-रचना के उत्कर्ष में योगदान देने वाले विभिन्न तत्वों का उनके काव्य में समुचित प्रयोग हुआ है।

6.8 शब्दावली

अद्वैतवाद – भारतीय दर्शन की वह शाखा जो ईश्वर और जीव में कोई भेद नहीं मानती। अद्वैतवाद के अनुसार ईश्वर और जीव के बीच जो भेद दिखाई देता है वह माया के आवरण के कारण है। अद्वैतवाद ब्रह्म को सत्य तथा जगत को मिथ्या मानता है।

विशिष्टाद्वैतवाद – भारतीय दर्शन के इस मत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे। इस मत के अनुसार जगत माया नहीं है, वह वास्तविक है। इसमें ब्रह्म को निर्विशेष नहीं, सविशेष माना गया है। इसमें परमात्मा को अंशी तथा जीव और जगत को उसका अंश माना गया है।

अवतार – ब्रह्म का भू-लोक पर जीव के रूप में प्रकट होना।

समन्वय – दो परस्पर विरोधी विचारों, पद्धतियों के बीच सामंजस्य की स्थापना।

नवधा भक्ति – 'भागवत' में भक्ति के नौ रूप माने गए हैं। इन्हें ही नवधा भक्ति कहते हैं। भक्ति के ये नौ रूप हैं– श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य भक्ति, सख्य भक्ति तथा आत्म निवेदन।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं – विभिन्न वेद, पुराण तथा शास्त्र से समर्थित।

6.9 उपयोगी पुस्तकें

- *गोस्वामी तुलसीदास*– आचार्य रामचंद्र शुक्ल; प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
- *तुलसी काव्य मीमांसा*– उदयभानु सिंह; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
- *तुलसी के हिय हेरि*– विष्णुकांत शास्त्री; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- *गोस्वामी तुलसीदास (विनिबंध)*– रामजी तिवारी; साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
- *लोकवादी तुलसी*– विश्वनाथ त्रिपाठी; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) वेणीमाधव दास

   (ख) 'गौतमचंद्रिका'

   (ग) एफ. एस. ग्राउज

   (घ) संवत् 1589 अर्थात 1632 ई.

   (ङ) पच्चीस

2. (क) 'पर्वती मंगल' में शिव-पार्वती के विवाह की कथा कही गई है।

(ख) 'जानकी मंगल' में परशुराम का राम से मिलन तब होता है जब बारात अयोध्या लौट रही होती है। यह प्रसंग 'रामचरितमानस' से भिन्न है।

(ग) 'रामचरितमानस' के कुल सात कांड क्रमशः इस प्रकार से हैं– बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड, सुंदरकांड तथा उत्तरकांड।

(घ) तुलसीदास की 'विनय-पत्रिका' में उनके दैन्य भाव की केंद्रीयता है।

3. देखिए– भाग 6.2

4. (क) ×

(ख) ✓

(ग) ×

(घ) ✓

(ड़) ✓

5. देखिए– भाग 6.3

6. देखिए– भाग 6.3

7. देखिए– भाग 6.4

8. देखिए– भाग 6.4